राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]

★

— ग्रन्थाङ्क १८ —

रभसनन्दिप्रणीतः

कारकसंबन्धोद्योतः

★

— प्रकाशक —

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute; Jaipur.)

जयपुर (राजस्थान)

वि० सं० २०१३] प्रति ७५० [मूल्य रू०

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]

★

– ग्रन्थाङ्क १८ –

रभसनन्दिप्रणीतः

कारकसंबन्धोद्योतः

★

— प्रकाशक —

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute; Jaipur.)

जयपुर (राजस्थान)

वि० सं० २०१३] प्रति ७५० [मूल्य रु०

१) रु० ७५ न० पै०

प्रकाशक –
संचालक – राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, के आदेशानुसार – गोपालनारायण बोहरा ।

मुद्रक –
जयन्ति दलाल, वसंत प्रिण्टिंग प्रेस, घीकांटा रोड, अहमदाबाद

RĀJASTHĀNA PURĀTANA GRANTHAMĀLĀ

Published by the Government of Rajasthan

A Series devoted to the Publication of Sanskrit, Prakrit, Apabhraṁśa, Old Rajasthani-Gujarati and Old Hindi works pertaining to India in general and Rajasthan in particular.

*

General Editor

Acharya JINA VIJAYA MUNI, Puratattvacharya,

Honorary Director, Rajasthan Oriental Research Institute.

Honorary Member of the German Oriental Society; Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona; and Gujarat Sahitya Sabha, Ahmedabad.

No. 18

KARĀKA-SAṂBANDHODYOTA

of

RABHASANANDI

Edited by

Prof. Dr. HARIPRASAD SHASTRI

M. A., Ph. D. (Bombay),

(Asstt. Director, B. J. Institute of Learning and Research, Gujarat Vidya Sabha, Ahmedabad.)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE

JAIPUR

1956

रभसनन्दिप्रणीतः

कारकसंबन्धोद्योतः

★

सम्पादक

प्राध्यापक डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री, एम्. ए., पीएच्. डी. (बंबई),

(उपाध्यक्ष, भो. जे. अध्ययन-संशोधन विद्याभवन,

गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद)

★

—: प्रकाशक :—

राजस्थान-राज्याज्ञानुसार

संचालक-राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute; Jaipur.)

जयपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०१३] प्रथमावृत्ति ★ मूल्य रू० [खिस्ताब्द १९५६

१) रु० ७५ न० पै०

CONTENTS

ADDENDA ET CORRIGENDA

Page	Line	
१	३	Read बुद्धं for वुद्धं.
१	१३	Drop ' from कर्तृकेर्म्मैव.
६	२३	Add A. before पीठं.
८	२१	Read भोजनैक्रियायाः for भोजैनक्रियाया.
८	last	Read २२ for २१.
९	१७	Read १० for २२.
९	२४	Read °कर्म्मैव for °कर्म्मेव.
१४	२१	Read चे'ति for वे'ति.
१४	३०	Add (पा. २, ३, ८) before वचनात्.
१५	१३	Drop '।' before सचेतनो°.
१८	१२	Add (? कृत' इति) after कृ'दिति.
१८	१७	Read परोक्षावच्चे'ति for परोक्षा'विति.
१८	३०	Read A. °क्षा'विति for B. °क्षावच्चेति.
१९	७	Read 'वेत्तेः° शैन्तुवन्सु'रिति.
२०	१३	Drop चा before य्वदरिद्रातेरिति.
२२	१९	Add (? नी) after णी.
२३	३०	Add B. before °लिकायाः
२७	१०	Read 'कर्म्मवत् कर्म्मकर्त्तै'ति.

प्रधान संपादकीय वक्तव्य

*

सन् १९४२ के डीसंबरसे ४३ के अप्रेल तकके ५ महिने जैसलमेरके सुप्रसिद्ध प्राचीन जैन ज्ञानभंडारोंका विशेषरूपसे अवलोकन करनेका हमें सुअवसर मिला। हमारे साथ गुजरात विद्यासभाके प्राचीन साहित्य भण्डारके भाण्डागारिक (क्यूरेटर) और गुजराती साहित्यके मर्मज्ञ विद्वान् एवं विवेचक-लेखक अध्यापकवर श्रीकेशवरामजी का. शास्त्री तथा प्राकृतसाहित्यके मर्मज्ञ पण्डित श्रीयुत अमृतलाल मोहनलाल भोजक, एवं प्राचीन ताडपत्रीय ग्रन्थ-लिपिके प्रमाणभूत प्रतिलिपिकर्ता श्रीयुत चिमनलाल भोजक, रसिकलाल भोजक, पं. शान्तिलाल शेठ तथा नागोरनिवासी मूलचंद व्यास, जयगोपाल व्यास, मेघराज व्यास आदि विद्वान् और सुयोग्य लेखकगणका अच्छा समूह था। उन पांच महिनोंमें हमने उक्त ग्रन्थभण्डारोमेंसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी, व्रज आदि भाषाओमें रचे हुए छोटे-बडे सेंकडों ही अप्रसिद्ध-अज्ञात-अप्राप्य ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियां करवाई। इनमेंसे कई ग्रन्थोंका तो हमने अपनी 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' द्वारा प्रकाशन करना निश्चित किया, जिसके फलस्वरूप इतः पूर्व कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और कई अभी प्रेसोंमें छप रहे हैं।

राजस्थान पुरातनग्रन्थमालाके १८ वें पुष्पके रूपमें, कारकसम्बन्धोद्योत नामक प्रस्तुत ग्रन्थ विद्वानोंके करकमलोमें उपस्थित है यह भी उसी जैसलमेरके ज्ञानभण्डारमेंसे प्राप्त हुआ था।

यद्यपि यह ग्रन्थ बंगालमें पहले छप चुका है पर बहुत ही अशुद्ध और अस्तव्यस्त रूपमें छपा हैं। बंगालमें इसका पठन पाठन भी, पुरानी शैलीकी पाठशालाओमें, कुछ प्रचलित रहा है। जैसलमेरमें जब हमें इस ग्रन्थकी प्रायः सुविशुद्ध एवं अधिक प्राचीन प्रति दृष्टिगोचर हुई तो हमने इसकी प्रतिलिपि कर लेनेका निश्चय किया। वहां पर एक अन्य भण्डारमें इसकी अपेक्षाकृत अर्वाचीन परंतु, कुछ विशिष्ट प्रकारके पाठ-भेदवाली प्रति भी प्राप्त हुई। अतः इन दोनों प्रतियोंके पाठ-भेदोंके साथ इसकी प्रतिलिपि भाषाशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् पं. श्री केशवराम का० शास्त्रीने बडे परिश्रमके साथ स्वयं अपने हाथसे की। शास्त्रीजीकी की हुई यह प्रतिलिपि अहमदाबादके गुजरात विद्यासभाके प्राचीन साहित्य भण्डारमें सुरक्षित रखी गई। राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालाके प्रकाशनका आयोजन जब हमने किया तो इसमें प्रस्तुत ग्रन्थको प्रकाशित करनेका हमारा विचार हुआ और तदनुसार इसका संपादन कार्य गु. विद्यासभाके अध्ययन-संशोधन विभागके भारतीय प्राचीन इतिहास एवं संस्कृतिके प्राध्यापक एवं उपाध्यक्ष (आसिस्टेंट डायरेक्टर)

डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री एम्. ए. पीएच. डी. को दिया गया। डा. हरिप्रसाद शास्त्री संस्कृतके एक अच्छे अध्ययनशील विद्वान् हैं और साथमें भारतीय प्राचीन इतिहासके भी विशेषज्ञ हैं। इनने अपनी पीएच. डी. की डिग्रीके लिये बंबई युनिवर्सिटीको 'वलभीका मैत्रकवंश' इस विषयपर बहुत ही शोधपूर्ण बृहन्निबन्ध (थिसीज) उपस्थित किया जो समादरणीय होकर, इनको तद्विषयक उपाधि प्रदान की गई। वलभी के वंशके अनेक प्राचीन ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं जो प्राचीन लिपिके ज्ञानके लिये बडे उपयोगी सिद्ध हुए हैं। डॉ. शास्त्रीने इन ताम्रपत्रोंकी लिपिको पढनेके लिए यथेष्ट श्रम लिया है अतः इनका प्राचीन लिपिविषयक ज्ञान भी अधिक विस्तृत रूपमें विकसित बना है। प्रस्तुत ग्रन्थके संपादनमें इनने जिस मनोयोगसे काम किया है वह इनकी लिखी हुई प्रस्तावना (इंग्रेजी इन्ट्रोडक्शन) से ज्ञात होता है। ग्रन्थ और ग्रन्थकारके विषयमें जो भी आवश्यक ज्ञातव्य है वह इस प्रस्तावनामें, यथेष्ट रूपसे निरूपित कर दिया गया है।

प्रस्तुत राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालामें प्रकाशन निमित्त, गुजरात विद्यासभा संचालित भो. जे. अध्ययन-संशोधन विद्याभवनके अध्यक्ष प्रा० श्रीयुत रसिकलाल परीखने, विद्यासभाके संग्रहमें सुरक्षित इस प्रकारके कई ग्रन्थोंका पूर्ण उपयोग करनेकी, एवं अपने साथी सुयोग्य विद्वानोंका भी संपादनादि कार्यमें विशेष सहयोग प्रदान करनेकी जो ममत्वभावना प्रदर्शित की है उसके लिये मैं विशेष रूपसे अपना कृतज्ञभाव प्रकट करता हूं।

अनेकान्तविहार
अहमदाबाद.
भाद्रपद १५. वि. सं. २०१३
(२०-९-५६)

मुनि जिनविजय
सम्मान्य संचालक
राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर
जयपुर

PREFACE OF THE GENERAL EDITOR

I got an opportunity, by a piece of good luck, to visit Jesalmere and inspect its famous Jaina Jñāna Bhaṇḍāras for a period of five months, from December 1942 to April 1943. I had with me a company of good scholars and copyists viz. Pandit Keshavaram Shastri, curator of the Mss. Library of Gujarat Vidya Sabha, Ahmedabad, and a scholar of repute, Pandit Amritlal Mohanlal Bhojak, a fine and sound scholar of Prakrit, and a group of authentic copyists of the script of ancient palm-leaf manuscripts-Shri Chimanlal Bhojak, Shri Rasiklal Bhojak, Pandit Shantilal Sheth, and Shri Mulchand Vyas, Shri Jayagopal and Vyas, Shri Meghraja Vyas of Nagor and others.

In the course of these five months I got copied from those Bhaṇḍāras hundreds of rare unpublished and unknown small and big works in Sanskrit, Prakit, Apabhramśa, old Rajasthani, Gujarati, Hindi and Vraja languages, existing in manuscript form. I decided to publish some of these in the Singhi Jain Granthamālā edited by me. As a result some works are already published and some are in the press.

Kārakasambandhodyota which is being offered as the eighteenth number of the Rājasthāna-Purātana-Granthamālā was also obtained from the Jñāna Bhaṇḍāra at Jesalmere. Even though this work was previously published in Bengal it was done in a very incorrect form and a haphazard manner. (This work seems to have continued as a text-book in some old-world Pāṭhashālās of Bengal.)

I saw an old and quite correct Ms. of this work at Jesalmer. There was another Ms. of this work in another Bhaṇḍāra of Jesalmere which is comparatively modern. Pt. Keshavram Shastri made a copy out of these mss. with great labour and care. This copy is in possession of the Gujarat Vidya Sabha, Ahmedabad.

When I planned the Rājasthāna-Purātana-Granthamālā, I thought of publishing this work. The work of editing was entrusted to Prof. Dr. Hariprasad Shastri M. A. Ph. D. now assistant Director of the B. J. Institute of Learning and Research, Gujarat Vidya Sabha, Ahmedabad. Dr. Shastri is a learned scholar devoted to the cause of Sanskrit research, particularly the ancient history of Bhārata. He worked on the subject of the Cultural Data provided by the Valabhī Copper-plate Grants and

presented a thesis on it to the University of Bombay, for which he got the degree of Ph. D. His contribution has been highly spoken of and shows the proficiency of Dr. Shastri in epigraphy and historical research.

His introduction to this work bears testimony to his acumen and scholarship. He has discussed all the relevant topics in the introduction to which the reader is referred.

I must express my thanks to Prof. Rasiklal Parikh, Director of the B. J. Institute of Learning and Research of Gujarat Vidya Sabha for permitting the use of the mss. in the collection of Gujarat Vidya Sabha and getting me the co-operation of his colleagues of the Institute in editing several works for the Rājasthāna Purātana Granthamālā.

Anekanta Vihar
Ahmedabad
20-9-56

Muni Jinavijaya
Hon. Director,
Rājasthāna Purātattvānveṣaṇa-Mandira
JAIPUR.

Introduction

Text : The text consists of (1) a set of 15 कारिकाs including the मङ्गलाचरण verse, and (2) a comprehensive commentary on them.

Manuscripts : This edition is based upon two manuscripts from the Bhandars at Jesalmer:-

A—A paper manuscript (No. 207) from the big Bhandar.[1] It consists of 8 leaves, $10\frac{3}{4}" \times 4\frac{1}{4}"$ in size. There are 17 lines on each side, the back side of the last leaf being blank. Each line contains about 64 to 66 letters. The manuscript is not dated, but paleographically it seems to be some four hundred years old.

B—A paper manuscript from the Bhandar of Dungarshi Yati. It also consists of 8 leaves, but the size is reduced to $9\frac{1}{8}"$ $\times$ $4\frac{1}{4}"$. There are 17 lines on each page, the lower half of the last page being blank. Each line contains about 60 to 62 letters. This manuscript also is undated, but it is obviously later than *A*.

Of these *A* was copied *verbatim et literatim* by my colleague Prof. K. K. Shastree, who was deputed to Jesalmer by the Gujarat Vidya Sabha, Ahmedabad, to copy some selected manuscripts there. He not only copied *A*, but also collated it with *B* under the guidance of Muni Jinavijayji and noted all variants found in the latter. This edition is prepared by me on the basis of this material supplied by the Gujarat Vidya Sabha. In selecting readings I have generally given preference to *A*, but occasionally I have even preferred *B* to *A*. The variants in both cases are noted in the foot-notes. Trivial variants which obviously appeared to be clerical errors are not included among them. A few inexplicable readings have been left as they are, because they could not be referred back to the original manuscripts which were not at my disposal while preparing the text. But the material supplied was very satisfactory on the whole.

Both the manuscripts are complete and their contents are identical on the whole. They, however, contain a few peculiar features, which may be noted here.

---

1 cf. Catalogue of Manuscripts in Jesalmer Bhandars, p. 46.

(i) *A* cites all the कारिकाs collectively at the beginning and then quotes only the initial portion[1] of each कारिका in the commentary, while *B* cites each कारिका only along with its commentary and cites it completely there. Later on, however, even *A* cites complete कारिकाs in the commentary.[2]

(ii) The commentary in *A* passes over the मङ्गलाचरण verse altogether and commences with the second कारिका which forms the first verse of the textual portion, while *B* not only cites the मङ्गलाचरण verse at the beginning of the commentary, but also includes the corresponding commentary upon it.[3]

(iii) *B* omits the name of the author in the introductory passage as well as in the colophon. This point will be discussed in detail later on.[4]

(iv) As regards the technical treatment of the subject, *B* sometimes contains more appropriate readings which deserve to be selected for the text, e. g., पीठे (पृ. ६), कुरून् (पृ. १२) कृति (पृ. १६), क्तवन्तु (पृ. १८), वन्तु (पृ. १८) क्वन्तु (पृ. १८), आनश् (पृ १८), ष्यण् (पृ. २०), 'युट्चे'ति (पृ. २१) and so on. Here it may also be noted that as regards the sequence of the examples given for the three genders under कारिका No. 3, the sequence adopted in *B* better corresponds to the order cited in the enumeration of the genders.[5]

(v) The most peculiar feature of *B* lies in its exuberant tendency towards sectarianism. In his fervent devotion to Vishnu and Vaishnavism the interpolator seems to have altered readings of many examples cited in the commentary. This will be quite explicit by comparision of the following examples:

---

1 e.g. षट् कारकाणि इत्यादि। यो यत्रेत्यादि। मुख्यमित्यादि। दुह्याद्रेगित्यादि। and so on.

2 Nos. 12–15. (cf. p. 3, n. 4 and p. 12 in the text.)

3 The Calcutta edition, too, includes this portion:
ग्रन्थारम्भे विघ्नविनाशाय कृतमिष्टदेवतानमस्कारमादौ ग्रन्थकृद् विज्ञापयति-भग्नमित्यादि।...etc.

4 cf. p. xi.

5 cf. p. 6 of the text; also cf. n. 20 on that page.

Page	*A*	*B*
४	एधते विधुः।	एधते रामभक्तः।
४	कारको देवदत्तः।	का.को हरिः।
१०	मथ्यते स्म जलधिरमृतं देवासुरैः।	मथ्यते जलधिरमृतं वासुदेवेन।
१०	अजा ग्राममाकृष्यते जनेन।	भक्तो ग्राममाकृष्यते नारायणेन।
११	मैत्रमाभाषते देवदत्तं यज्ञदत्तः।	भक्तमाभाषते रामं भक्तिः।
१४	पयो दोहयति......देवदत्तः।	पयो दोहयति......कृष्ण।

(vi) This tendency is moderate as far as it substitutes such expressions for general expressions like मैत्रमाभाषते देवदत्तं यज्ञदत्तः। But it transgresses this limit when it adopts similar alterations with a view to brush off all allusions to another sect. *B* betrays this tendency towards Buddhism.

The text commences with a verse which unambiguously contains an invocation to Buddha.[1] *A* does not comment upon this verse, but cites it faithfully along with the subsequent verses. *B* comments upon this verse but contrives to avoid its application to बुद्ध by converting बुद्धं into बुधं[2] as well as by misinterpreting the sectarian terms मार and निर्वाण in a general sense.[3] This is not the only instance of such sectarianistic alteration. Wherever the text cites any illustrations that contain the glorification of Buddha or Buddhism, *B* alters the expressions into similar expressions denoting the glorification of Vishnu and Vaishnavism. This may be illustrated as follows:

Page	*A*	*B*
४	जयति बुद्धधर्म्मः।	जयति विष्णुधर्मः।
४	जीयते बुद्धधर्म्मेण।	जीयते विष्णुधर्मेण।
१५	सर्वं ज्ञाता सुगतः।	सर्वं ज्ञाता विष्णुः।

This narrow outlook of sectarianism, which is so clearly betrayed in *B*, is entirely absent in *A*. The text also cites some illustrations that denote the glorification of Brahmanism, but *A* nowhere attempts to alter their readings and shift their application to Buddhism. This may be illustrated by several

---

1 cf. भग्नं मारबलं येन and निर्वाणपदमारूढं.

2 cf. बुध्यते सर्वं स बुधः।

3 cf. p. 3, n. 3 of the text.

passages such as दानीयो ब्राह्मणः (पृ. ५), भिक्ष्यते पौरवो गां द्विजेन (पृ. १०), प्रार्थ्यते गां गृहमेधी द्विजेन (पृ. १०), वेदमधीते विप्रः (पृ. १६), पशुना रुद्रं यजते (पृ १५), and अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः (पृ. ३१).

(vii) The verse given at the end of the commentary in *A* makes mention of 420 units as the total measure of the manuscript. *B* repeats the same verse *verbatim*, but it also gives an additional verse before citing that verse, and this verse, which is given exclusively in *B* seems to denote the real measure of this manuscript. According to this verse the text consists of 419 units i e., it contanis 1 unit less than the other manuscript. This difference may be accounted for on the basis of some omissions and additions adopted in *B*. *A* cites the last four कारिकाs twice and repeats the initial portion of each कारिका throughout.[1] So the text in *A* gains much in quantity in comparision to *B*. But *B* makes up a good deal of the loss with the insertion of the commentary on the मङ्गलाचरण verse. It seems that *B* then sufferred the loss of only one measure at the end.

Other Editions: This is not the first printed edition of the text. It was first printed at Noakhali as early as in V. S. 1949 (1892–93 A. D.).[2] I am told that it was printed at the end of the शब्दरत्न. Its copies are not available since long. The text was next published at Calcutta along with the शब्दरूपकल्पद्रुम edited by Pt. Gurunath Vidyanidhi Bhattacharya. Its sixth edition was out in 1922 A. D. As far as I know its copies also are not available in the market.

The Noakhali edition was published under the title षट्कारकम् and the Calcutta edition was published under the title षट्कारककारिका for the कारिकाs and षट्कारककारिकाटीका for the commentary. Pt. Gurupada Haldar refers to the text under these titles. But the Jesalmer manuscripts give altogether a different title for this text and this is the first edition which bears that title.

---

1. cf. p. vi above. The insertion or omission of all the कारिकाs would make difference of 14 or 15 units, but *A* does not repeat all the कारिकाs completely.

2. cf. जेसलमीरभाण्डागारीयग्रन्थानां सूचिपत्रे अप्रसिद्धग्रन्थग्रन्थकृत्परिचये पृ. ५८

Title : The text of the कारिकाs is given separate in *A*, but it has no colophon, which may contain the title of that text. Nor does the commentary mention any specific title for it. Even the manuscripts mentioned in the different catalogues do not contain any separate title for the text of the कारिकाs. The manuscripts in Bengal give the general title षट्कारकम् for the whole text including the commentary. The Calcutta edition styles the text of the कारिकाs 'षट्कारककारिका.' I tried to trace the original source of this title, but it does not seem to have been given in old manuscripts. I think the editor elaborated the general title of the text and differentiated the title of the कारिका-text as 'षट्कारककारिका.' Accordingly the title given in the Calcutta edition seems to be of recent origin. In fact the text of the कारिकाs has no separate title for it.

The colophon given at the end of the commentary in the Jesalmer manuscripts does not contain the usual title षट्कारकम् which is generally mentioned in all complete manuscripts from Bengal. The colophon in *A* contains the title 'संबन्धोद्योत', while the title given in the colophon of *B* is 'कारकसंबन्धोद्योत.' Of these 'कारकसंबन्धोद्योत' is evidently preferable to 'संबन्धोद्योत,' as the subject of the text consists of the कारकs and the संबन्ध as well.[1] In fact the कारकs are pre-eminent among the विभक्ति-relations and the संबन्ध is often taken along with them under the same title. The manuscripts from Bengal accordingly style the text 'षट्कारकम्' and leave 'संबन्ध' understood along with it. But 'कारक' can never be left understood along with 'संबन्ध'. Thus the title given in *A* is inadequate, while the correct title seems to be that given in *B*. I think the omission of the important word 'कारक' in the title given in *A* may have its origin in the concluding verse cited before the colophon.[2] But the omission of the word in this verse is probably due to the restriction set by its short metre. Proper names are not infrequently required to be shortened in metrical compositions. Even the name of the author has been shortened into रभस in

---

1. cf. 'षट् कारकाणि संबन्ध' in कारिका No. 2.

2. आस्तां सरभसो लोकः संबन्धोद्योतसिद्धितः ॥

this verse.[1] But the name is given completely in the colophon which is in prose. Similarly, the title of the text is also cited completely in the concluding prose sentence of the commentary even in *A*.[2] The same title should have been given in the colophon as well. But it seems to have been repeated *literatim* from the verse which immediately precedes it. It is, however, satisfactory that the full title actually occurs in one passage in *A*. Thus the exact title of the text is कारकसंबन्धोद्योत, which is given in the concluding sentence in *A* as well as in the colophon of *B*.

As regards the title षट्कारक given in the manscripts from Bengal, it seems to have been drawn from the initial portion of the second कारिका, षट् कारकाणि संबन्ध etc. This title has been current there since long. But the title given in the manuscripts from Jesalmer is preferable to the title mentioned in the manuscriptes from Bengal. For, the real subject of the text consists of षट् कारकाणि and संबन्ध as well. The number of the कारकs is so well-known that it hardly requires to be inserted in the title of the text. So the subject proper is styled 'कारकसंबन्ध' which denotes the कारकs and the संबन्ध together. Hence the apt title for the text should be कारकसंबन्धोद्योत (An Elucidation of the कारकसंबन्ध). This title well aplies to the commentary which elucidates the subject of the कारकसंबन्ध elaborately. It also applies to the कारिकाs, which give not a mere enumeration of the several relations revealed by the seven cases but also a brief elucidation of their various aspects, especially in relation to the passive and the causal constructions. In short, the manuscripts from Jesalmer give a very appropriate title for the text, which denotes the elucidation of the कारकs and the संबन्ध given in the कारिकाs as well as in the commentary.

Author: The colophon of the commentary in *A* gives रभसनन्दी as the name of the author of the text. The colophon

---

1. The additional verse cited in *B* gives the complete name of the author, but then it has to omit the title altogether. In fact the full title cannot be adjusted to any quarter of the श्लोक.

2, अतः कारकसंबन्धोद्योतमापादयन्निह...परिश्रम इति ।

in *B* contains no reference to the author, but the name is given in the verse cited at the end of the commentary. cf. निर्णिता...... रभसनंद्दिना ॥ Similarly the next verse which is also given in *A* contains the name रभस in connection with the text. cf. आस्तां सरभसो लोकः सबन्धोद्योतसिद्धितः ॥ Thus both these manuscripts agree in ascribing the authorship of the text to रभसनन्दी. The Catalogue of the manuscripts of the India Office mentions the name of this author differently : वल्लभानन्द (No. 785), वहुसनन्दिन् (No. 786) and महेशनन्दिन् (No. 787). But these seem to be misnomers. Even the manuscripts from Bengal agree with our manuscripts from Jesalmer. In East Bengal where it is still taught it is popularly ascribed to the same author. And it is under this name that he is quoted is जुमरनन्दी's वृत्ति and in other books on grammar. Thus the evidence of our manuscripts is authentic and accurate, and the author of the text is रभसनन्दी.

The name is usually spelt रभसनन्दिन् or रभसनन्दी, but in our manuscript *A* it is clearly spelt रभसनन्दि.[1] Nevertheless I have here adopted the usual form of the name-ending, because the reading रभसनन्दिर्नामा in *A* is doubtful and seems to be corrected into रभसनन्दिनामा.

The references to the name of the author, given in the concluding verses as well as in the colophon are all related either to the whole text including the कारिकाs or to the commentary alone. If the title mentioned along with it also applies to the कारिकाs, रभसनन्दी must be taken to be the common author of the कारिकाs and the commentary. The text of the कारिकाs which is given separate in *A* has no colophon, which may have contained a reference to its title and author. But the introductory passage in *A* contains the following reference to रभसनन्दी :

इहायं कर्ता रभसनन्दिर्न(? ना)मा बालव्युत्पत्तये संक्षेपतः संबन्धमभिदधानः प्रस्तुतत्राह— षट् कारकाणि इत्यादि । The construction of this passage is so intricate that it may give rise to a controversy whether this reference applies to the authorship of the कारिकाs or to that of the commen

1. In forms like रभसनन्दिना or in compounds like रभसनन्दिविरचित it is very difficult to decide whether the base of the name-ending is नन्दि or नन्दिन्, as both forms are equally probable.

tary. The mention of the author's name in the colophon given at. the end of the commentary may tempt us to favour the second interpretation. It may also seem corresponding to the concluding passage of the commentary, इह स्थित एवायमस्माकं तान् (= मन्दमतीन्) उद्दिश्य परिश्रम इति । But the words संक्षेपतः in the introductory passage cannot be explicable, unless that passage is taken as applying to the कारिकाs, which treat the subject in an elicit but *concise* manner. This passage accordingly introduces the second कारिका, which forms the beginning of the text proper. This interpretation also elucidates the significance of the word प्रस्तुवन्, which also applies to the second कारिका which is *introductory* in relation to the succeeding कारिकाs. Thus these two words in the introductory passage seem expliable only when we apply the passage to the कारिका. It implies that रभसनन्दि was the common author of the कारिकाs and the commentary on them. Examples of स्वोपज्ञ commentary are not rare in Sanskrit literature. The कारिकाs and the commentary throughout appear as the productions of one and the same author. The text of the कारिकाs has no separate colophon and no separate title. The commentary contains not even a single reference to the author of the कारिकाs, though it sometimes alludes to the कारिकाs. Nor does the commentator ever differ from the author of the कारिकाs. In the body of the text the commentator cites and discusses the views of other grammarians and expresses his own views under the first person. Thus, there is no internal evidence for ascribing the two portions of the text to two different authors. Negative evidence favours the view of common authorship. The introductory passage of the commentary that attributes the कारिकाs to रभसनन्दी cannot be harmonised with its concluding portion that ascribes the commentary to the same author, unless and until we accept रभसनन्दी to be the common author of both.

The omission of the reference to the name of रभसनन्दी in the introductory passage in *B* is not emphatic, as the manuscript omits it even in the colophon at the end of the commentary. Nor should its insertion in the introductory passage in *A*

be suspected to be an erroneous interpolation on the ground that the author's name is given in the third person, for preference was often given to the third person for the sake of decorum.

The greatest point of objection may be raised on the ground that the tradition in Bengal has ascribed the authorship of the कारिकाs to दुर्गसिंह, who is usually identified with टीकाकार दुर्गसिंह who has written the commentary on the कातन्त्रवृत्ति by an earlier scholar of that name. If it can be proved that these कारिकाs are composed by दुर्गसिंह, he may be readily identified with टीकाकार दुर्गसिंह. But it is doubtful whether the कारिकाs are composed by दुर्गसिंह. I tried to trace the original source for this tradition but was not able to trace it to any old manuscripts. It seems to have been based upon the colophon inserted in the Calcutta edition, viz., दुर्गसिंहकृता षट्कारककारिका समाप्ता । But this identity of the author is possibly based upon the personal view of the editor, who does not cite any original source for it. The probability of this identity was possibly suggested by the common creed professed in the मङ्गलाचरण verses of the two works, coupled with the commentator's references to the views of टीकाकार दुर्गसिंह. Let us examine both these points critically: (1) It is true that both the टीकाकार and the कारिकाकार commence their works with an invocation to Buddha. But there is a gulf of difference in the treatment of the invocation. दुर्गसिंह presents it in a crooked manner, selecting ambiguous words like शिव, अज and स्वयंभू as attributes to Buddha[1], whereas the कारिकाकार invokes Buddha with simple attributes containing unambiguous concepts of Buddhism, such as मार and निर्वाण[2]. Taking this distinction into consideration, it rather appears more probable that the two works were composed by two different authors. (2) Nor do the two references to दुर्गसिंह in this commentary prove anything more than that रभसनन्दी cites the views of दुर्गसिंह as the views of an authority on the subject. At both places, once while

1. शिवमेकमजं बुद्धमर्हदग्र्यं स्वयंभुवम् । कातन्त्रवृत्तिटीकेयं नत्वा दुर्गेण रच्यते ॥

2. भग्नं मारबलं येन निर्ज्जितं भवपञ्जरम् । निर्व्वाणपदमारूढं तं बुद्धं प्रणमाम्यहम् ॥

commenting upon the second line of the sixth कारिका[1] and again while elucidating the full significance of the eleventh कारिका[2], रभसनन्दी refers to दुर्गसिंह as टीकाकार and not as कारिकाकार. As Pt. Gurupada Haldar[3] remarks, दुर्गसिंह is here 'referred to as an authoritative third person, who is not the author of the कारिकाs'. Had दुर्गसिंह also been the author of the कारिकाs, रभसनन्दी would have introduced his views differently, say, something like 'The author says so also in his टीका' or 'As the author explains this in his टीका'. But the references as they are expressed here apply to 'an authoritative third person, who is not the author of the कारिकाs.' Thus the text contains no internal evidence in favour of ascribing the authorship of the कारिकाs to दुर्गसिंह.

In his कातन्त्रवृत्तिपञ्जिका, त्रिलोचनदास makes some references to दुर्गसिंह's टीका on the कातन्त्रवृत्ति, but he does not make even a single reference to these कारिकाs. सुषेण विद्याभूषण *alias* कविराज, who has written a commentary on this पञ्जिका, quotes कारिका No. 12 from these कारिकाs *verbatim* while commenting upon the सूत्र 'कर्तृकर्म्मणोः कृति नित्यम्' (No. 247) from the कातन्त्र. But त्रिलोचनदास does not make even a slight reference to this कारिका in that context. This implies that these कारिकाs were composed, not by टीकाकार दुर्गसिंह whose views he cites in the पञ्जिका, but by some other grammarian who flourished later than the टीकाकार. It is thus improbable to attribute the authorship of the कारिकाs to टीकाकार दुर्गसिंह, and we have to identify the author with some grammarian who flourished later than the टीकाकार. The author must also be entirely devoted to Buddhism. In the absence of any references to distinction between the author of the कारिकाs and that of the commentary on them, it seems quite probable that the कारिकाs also were composed by रभसनन्दी, who is definitely the

---

1. शिष्टप्रयोगानुसारेण.......... इति टीकाकारः । (पृ १०-११)

2. अत्र च टीकाकारस्य न संमतम् । (पृ. १७)

3. In his व्याकरण दर्शनेर इतिहास, Vol. I, Pt. Haldar has ascribed the कारिकाs to टीकाकार दुर्गसिंह, but he did so only on reference to the Calcutta edition. On further inquiry he now holds that दुर्गसिंह is not the author of the कारिकाs.

author of the commentary. In other words the work of रभसनन्दी seems to be a स्वोपज्ञ one, corresponding for instance to the work of विश्वनाथ who has composed कारिकावली on न्याय as well as written a commentary (न्यायमुक्तावली) on it. Thus रभसनन्दी seems to be the common author of the कारिकाs and the commentary.

Date : It is already stated that the author's name was रभसनन्दी and that he was a follower of Buddhism. As regards his personal life, no more information is available. So we shall now try to fix his date as far as possible. The text contains no direct information on this point. Nor do any other works contain any direct data for the age of this author. We have, therefore, to gather hints for the upper and lower limits of his age. The upper limit may be fixed on the basis of internal references to other grammarians who flourished before the author. On p. 24 he alludes to शर्ववर्मन् and his सूत्रs. This evidently refers to the author of the कातन्त्र or कलाप, who is said to have flourished during the period of the सातवाहन kings (c. 235 B. C.—c. 225 A. D.). On. p. 22 the author makes a reference to जयादित्य, the author of the earlier chapters of the काशिका[1]. He is generally placed in the seventh century[2]. The author also cites the views of the टीकाकार, first on p. 11 and then on p. 17. It will be shown later on that the author here rerers to दुर्गसिंह II, the well-known टीकाकार of the कातन्त्र school. The date of this grammarian is not fixed precisely. He is posterior to दुर्गसिंह I, whose वृत्ति he comments upon. The वृत्तिकार is generally placed in the eighth century[3], and the टीकाकार about the ninth contury[4]. There is no reference to any grammarian posterior to टीकाकार दुर्गसिंह So his date (viz *circa* 9th century) forms the upper limit of the age of रभसनन्दी.

The lower limit of his age depends upon the date of the earliest work containg a reference to the author or his work.

1. Mention is made of this work on p. 29.

2. Haraprasad Shastri, Descriptive Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the collections of the Asiatic Society of Bengal, p. xxviii

3. Ibid., p. xl.

4 युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, पृ. ४११

कविराज who quotes कारिका No. 12 in his commentary on the पञ्जिका, flourished after the fifteenth century. रभसनन्दी is also quoted by जुमरनन्दी, who revised the वृत्ति on the सूत्रs of the संक्षिप्तसार school. The late Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri, who discussed the date of जुमरनन्दी elaborately, places him in the second half of the eleventh century[1]. As he is the earliest author who quotes रभसनन्दी, this date forms the lower limit of the age of the latter.

According to these two limits रभसनन्दी may be placed between the ninth century and the eleventh century, say, approximately in the tenth century. He is not quoted by त्रिलोचनदास in his पञ्जिका[2]. So he seems to have flourished after त्रिलोचनदास. But the date of the latter is not fixed definitely. He is generally placed in the eleventh century[3], but there is no definite evidence for it. He is simply found to be posterior to टीकाकार दुर्गसिंह. रभसनन्दी also flourished after the टीकाकार. But it is difficult to determine the *inter se* chronology of these two, for the पञ्जिका contains no reference to the work of रभसनन्दी and रभसनन्दी also makes no reference to the views expressed in the पञ्जिका. It is, therefore, quite probable that there was no great interval between these two grammarians. For definite data we should, however, rely upon the two limits related to टीकाकार दुर्गसिंह and जुमरनन्दी, and place रभसनन्दी between the ninth century and the eleventh century accordingly.

Subject : This is a प्रकरणग्रन्थ[4] (monograph), dealing with the chapter of the कारकs in Sanskrit Grammar. 'कारक' denotes the relation subsisting between a noun and a verb in a sentence. There are six कारकs, viz. कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान and अधिकरण. The relation that subsists between one noun and another in a sentence is termed संबन्ध. It is not included among the कारकs,

---

1. Haraprasad Shastri, op. cit, p. lxvi.

2. cf. p. xiv above.

3. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ. ४१२

4. शास्त्रैकदेशसंबद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम् । आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः ॥

but is closely allied with them. The monograph gives an exposition of the six कारकs as well as of the संबन्ध.[1]

Treatment: The subject is treated in 15 कारिकाs in all. The first कारिका is simply a मङ्गलाचरण verse containing an invocation to Buddha. The subject proper begins with the second कारिका which introduces two varieties of the six कारकs and the संबन्ध each, viz. उक्त and अनुक्त. In the commentary the author cites various examples of all these fourteen varieties of relations. The उक्त is defined in the third कारिका. The commentary elucidates the definition as follows : यः प्रत्ययः (तद्धितः त्यादिः[2] कृत् वा) समासो वा यत्रार्थे विहितः तमर्थं वक्ति तस्यैव लिङ्गसंख्याभ्यां युञ्जानः । And the relation of the लिङ्ग and the संख्या is generally stated (कारिका No. 4). Then follows the elucidation of certain technical aspects of the कर्तृ-कारक and the कर्म-कारक, used in relation to the causal construction (कारिकाs Nos. 5-12). Here it is stated that the उक्त usually governs the प्रथमा, while the अनुक्त generally governs the द्वितीया in the कर्मकारक and the तृतीया in the कर्तृकारक, leaving some scope to the षष्ठी under certain circumstances[3]. The thirteenth कारिका refers to the scope of other optional विभक्तिs governed by the कर्तृकारक and the कर्मकारक. The next कारिका (No. 14) specifies the relation of the remaining कारकs viz. करण, संप्रदान, अपादान, and अधिकरण to the तृतीया, the चतुर्थी, the पञ्चमी and the सप्तमी respectively, while the corresponding relation of the संबन्ध to the षष्ठी is specified in the कारिका No. 15, which froms the concluding verse of the कारिकावली.

The monograph belongs to the कातन्त्र or कलाप school of Sanskrit Grammar. The कारकs form the fourth पाद of the second section[4] of the कातन्त्रसूत्रs. The monograph is, however, composed with a new scheme of its own. The author elucidates the subject in a way which is not entirely drawn from the सूत्रs, the वृत्ति or the टीका. He omits a number of rules given in the

1. cf. 'षट् कारकाणि संबन्धः' in कारिका No. 2.

2. The आख्यातिक प्रत्यय, however, governs only the संख्या, not the लिङ्ग as well. But it also governs the पुरुष.

3. cf. कारिकाs Nos. 11 and 12.

4. Styled नाम्नि चतुष्टयम्.

सूत्रs[1] and introduces several points which are not treated in the कातन्त्र. Nevertheless the monograph belongs to the कातन्त्र school, inasmuch as it takes सूत्रs of the कातन्त्र grammar as the main basis aud usually accepts the authority of the टीकाकार of that school.

रभसनन्दी was a well-read scholar. He was a follower of the सूत्रs, the वृत्ति and the टीका of the कातन्त्र. Yet he was conversant with certain concepts which were not treated even in the टीका so elaborately This may be best illustrated by his elaborate treatment of the varieties of all कारकs. The varieties enumerated in this monograph are as follows:

---
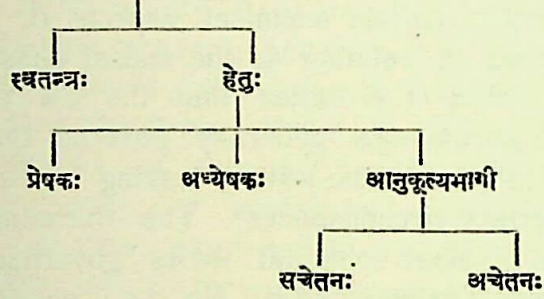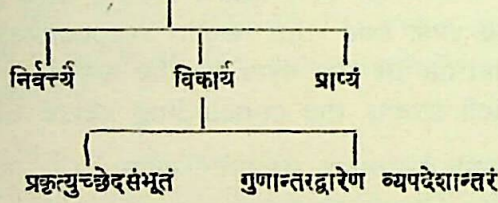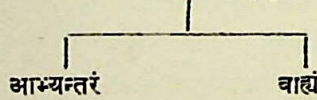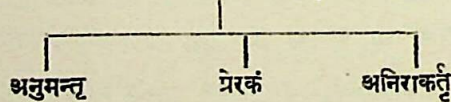
1. रभसनन्दी quotes only 17 सूत्रs out of the 52 सूत्रs given in the कारकपाद of the कातन्त्र.

These varieties are not mentioned in the सूत्रs or even in the वृत्ति. The टीका mentions the varieties of four कारकs, viz. कर्म, करण, संप्रदान and आधार. But it does note give any varieties of the remaining कारकs, viz. कर्त्ता and अपादान. As regards कर्त्ता, it discusses the two main functions of the हेतु, viz. प्रेषण and अध्येषण[1], and also takes into consideration the additional function of their indirect accomplishment (तत्समर्थानि). But the concept of the आनुकूल्यभागी is not yet developed. The टीका cites the example कारीषोऽध्यापयति and even notes the अचेतनत्व of कारीष, but it does not give any example of the सचेतन type of that variety. The varieties and sub-varieties given in the कारकसंबन्धोद्योत thus indicate a further development in the treatment of this कारक. Similarly the concept of analysing the अपादान into चल and अचल is not developed in the टीका[2]. रभसनन्दी thus treats this subject even more elaborately than the टीकाकार.

The author was conversant not only with the सूत्रs, वृत्ति and टीका of the कातन्त्र school, but with the well-known works of other eminent schools as well. He makes references to the views of other grammarians in the following passages:—

(1) While reconciling 'अन्यद्द वा' with 'एव' in कारिका No. 6. he cites the authority of the टीकाकार as follows: 'शिष्टप्रयोगानुसारेण इनन्ते पर्यायेण कर्मोक्तं भवति' इति टीकाकारः । (पृ १०–११), and then he quotes examples like ग्रामं गम्यते देवदत्तो यज्ञदत्तेन, ग्रामो देवदत्तमिति वा । This view

---

1. It does not, however, mention the corresponding terms for the varieties of the हेतु.

2. Nor are these two concepts mentioned even in the पञ्जिका.

is cited in the टीका on the सूत्र-यत् क्रियते तत् कर्म । It runs as follows: 'गत्यर्थानामिनन्तानां शिष्टप्रयोगानुसारेणोभयत्रापि । गमयति ग्रामं देवदत्तम् । गम्यते देवदत्तो ग्रामम् । गम्यते ग्रामो देवदत्तम्' ।

(2) While commenting upon 'तयोरथ भवेत् षष्ठी' in कारिका No. 11, the author rejects the view of a certain grammarian (कश्चित्) and cites the authority of the टीकाकार in his support. The rejected view is given as follows: 'इह गत्यर्थकर्मणि कृत्प्रयोगेऽपि न षष्ठी, अभिधानादिति **कश्चित्** । गत्यर्थकर्मणि चतुर्थी चेति[1] सिद्धे द्वितीयाग्रहणं प्रयत्नतो ज्ञापयति । तन्मते ग्रामं गन्ता देवदत्तः, ग्रामाय गन्ता देवदत्तो वा । एवं ग्रामं गमयिता देवदत्तस्य यज्ञदत्तः, ग्रामायेति वा; इत्यादिकं भवति' । (पृ. १७). This view is then rejected as follows: 'अत्र च **टीकाकारस्य** न संमतम् । न चैवं शिष्टप्रयोगा दृश्यन्ते[2] । —इति अनादरादस्माभिरुपेक्षित एवायं पक्षः' । (पृ. १७). The view of the टीकाकार may be traced to the following passage in the दुर्गटीका under the सूत्र **गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि** । — 'कश्चिदाह - चतुर्थी चेति सिद्धे द्वितीयाग्रहणं कृद्योगलक्षणषष्ठीबाधनार्थम् । ग्रामं गन्ता ग्रामाय गन्ता इति । न पुनरेवं शिष्टप्रयोगो दृश्यते ।' Thus this reference also quite applies to the दुर्गटीका on the कातन्त्रवृत्ति.

The view rejected by रभसनन्दी is also cited and rejected by the टीकाकार. The expression given in the टीका quite applies to the काशिका, wherein जयादित्य concludes his commentary on the सूत्र-**गत्यर्थकर्मणि०** (पा० २, ३, १२)[3] as follows: 'द्वितीयाग्रहणं किम् । न चतुर्थ्येव विकल्प्येत । अपवादविषयेऽपि यथा स्यात । ग्रामं गन्ता । ग्रामाय गन्ता । **कृद्योगलक्षणा षष्ठी न भवति** ।'[4]

Here it may seem strange that the author refers to जयादित्य as कश्चित्, though elsewhere (p. 22) he refers to him by his specific name. But it may be noted that in this context he is referred to as the पूर्वपक्ष which is generally cited under the unspecific word कश्चित्[5], while his view is mentioned in support

---

1. B. वेति. 2. B. °गो दृश्यते ।

3. This सूत्र which occurs in the कातन्त्र (२, ४, २४) is also found *verbatim* among the पाणिनिसूत्रs.

4. Even कविराज probably ascribes this view to जयादित्य.

5. Even the टीकाकार makes a similar reference to him in this context. cf. 'कश्चित्' in the passage quoted above from the दुर्गटीका.

of the सिद्धान्त in the other context, where it is quite apt to make a specific reference to him So there is no objection in identifying this कश्चित् with जयादित्य.[1]

(3) In his exposition of कारिका No. 12, रमसनन्दी mentions and rejects the view that the अनुक्त कर्म governs the षष्ठी in examples like दोग्धव्या गौः पयसो गोपालकेन and नेतव्यो भारो ग्रामस्य वण्ठेन (पृ. २२). Here also he refers to the पूर्वपक्ष as कश्चित्. This stands for some grammarian other then जयादित्य, whose view is here cited by रमसनन्दी in support of his own view I have not been able to trace this view to its original source and identify the पूर्वपक्ष.

रमसनन्दी rejects this view in favour of the other view that the कर्म here governs the द्वितीया and not षष्ठी as in दोग्धव्या गौः पयो गोपालकेन and नेतव्यो भारो ग्रामं वण्ठेन. Then he cites the authority of जयादित्य as follows : तथा जयादित्योऽपि 'कृत्यानां कर्त्तरि वे'त्यत्र सूत्रे (पा० २, ३, ७१) एतदेव दर्शयति । तद् यथा—उभयप्राप्तौ कृत्यानां षष्ठयाः प्रतिषेधो वक्तव्यः । बोढव्या ग्रामं शाखा देवदत्तेन, नेतव्या ग्राममजा देवदत्तेनेति स्थितम् । (पृ. २२). This passage is quoted *verbatim* from the concluding portion of जयादित्य's commentary on the सूत्र mentioned above.

(4) On p. 29 रमसनन्दी cites another passage from the काशिका : तथा च काशिकायाम्, एकस्माद्प्युपपद्यमाना षष्ठी विशेषणादेव भवति विशेष्यात् तु प्रथमैव, तस्माद् विवक्षितेऽर्थे तदभिधायी शब्दः प्रयुज्यते इति स्थितम् । I tried to find out its context in the काशिका but could not trace it anywhere. This reference is given only in *B* and the interpolator may have mis-attributed it to the काशिका. Perhaps the real source of this reference was the महाभाष्य of पतञ्जलि[2]. There the भाष्य on the सूत्र 'षष्ठी शेषे' (२, ३. ५०) contains the following passage bearing on this remark; **षष्ठी शेष** इति चेद् **विशेष्यस्य** प्रतिषेधो वक्तव्यः । राज्ञः पुरुष इत्यत्र राजा **विशेषणः**, पुरुषो **विशेष्यः**। तत्र प्रातिपदिकार्थो व्यतिरिक्त इति कृत्वा प्रथमा न प्राप्नोति । तत्र षष्ठी स्यात्, तस्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः । तत्र षष्ठीं प्रतिषिध्य प्रथमा विधेया । राज्ञः पुरुषः । ...राजशब्दादुत्पद्यमानया षष्ठयाभिहितः सोऽर्थ इति कृत्वा पुरुषशब्दात् षष्ठी न भविष्यति ।[3]

---

1. Here some may identify him with विमलमति, the author of the भागवृत्ति, on the basis of his वृत्ति on the सूत्र **कृति षष्ठी वा** (No. 101) of the संक्षिप्तसार school.

2. cf. 'वैयाकरणः शेषः' । (p. 4, n. 6)

3. cf. द्विष्ठोऽप्यसौ परार्थत्वाद् गुणेषु व्यतिरिच्यते । तत्राभिधीयमानश्च प्रधानेऽप्युपयुज्यते ॥

The कातन्त्र, being a very short work, was supplemented by commentaries and sub-commentaries as well as by supplements and accessories. The कारकसंबन्धोद्योत is a valuable accessory of the कातन्त्र. It is still taught in Bengal, where the study of the कातन्त्र is continued assiduously.

At the end I acknowledge sincere thanks to Muni Jinavijayaji and Prof. R. C. Parikh, who have given me guidance for this work. I am much indebted to Pt. Gurupada Haldar, who has enlightened me with respect to the problem of the author and his date[1]. I also thank my friend Mrs. Debala Mitra, M.A., who supplied me with information about the Calcutta Edition of the text as well as about its manuscripts in the library of the Asiatic Society of Bengal. I should also thank some of my colleagues, especially Pt. Satindra Chandra Bhattacharya, who is conversant with the कातन्त्र since long. He has spared no pains to go through the press-copy thoroughly and suggest a number of appropriate readings for the text.

'Suvas', Azad Society,
Ahmedabad-6
10-4-1952

Hariprasad G. Shastri

1. Here I should make it clear that I fell short of time to discuss with him all aspects of this problem in detail by correspondence. Even in his preliminary inquiry he has found reasons to reject the current view of ascribing the authorship of the कारिकाs to दुर्गसिंह. Nevertheless he did not condescend to ascribe it to रमसनन्दी. I wish I could communicate the grounds of this view to him before the publication of this Introduction.

कारिकाः ।

भग्नं मारबलं येन निर्ज्जितं भवपञ्जरम् ।
निर्वाणपदमारूढं तं बुद्धं प्रणमाम्यहम् ॥१॥
षट् कारकाणि संबन्ध उक्तानुक्ततया द्विधा ।
विभक्तिश्चेति निश्चेयमवश्यं योगमिच्छता ॥२॥
यो यत्र प्रत्ययो जातः समासो यत्र वा भवेत् ।
स एनं वक्ति युञ्जानस्तस्य लिङ्गेन संख्यया ॥३॥
लिङ्गसंख्याभियोगश्च प्रायो भवति दर्शितः ।
वेदाः प्रमाणमित्यादि प्रयोगो येन संमतः ॥४॥
मुख्यं कर्त्तारमाचष्टे प्रत्ययोऽनेककर्तृके ।
मुख्यः प्रयोजको ज्ञेयः प्रयुक्तो नापरैर्यदि ॥५॥
दुहादेर्गौणकं कर्म्म नी-वहादेः प्रधानकम् ।
इनन्ते कर्तृकर्म्मैव अन्यद् वा वक्ति कर्म्मजः ॥६॥
गमनाहारबोधार्थशब्दार्थाकर्मधातुषु ।
अनिनन्तेषु यः कर्त्ता स्यादिनन्तेषु कर्म्म तत् ॥७॥
न नीखाद्यदिशब्दायक्रन्देहाः कर्तृकर्म्मकाः ।
तथा भक्षिरहिंसायां वहोऽसारथिकर्तृकः ॥८॥
हृ-क्रोरपि तथा कर्त्ता इनन्ते कर्म्म वा भवेत् ।
अभिवादि दृशोरेवमात्मने-विषये परम् ॥९॥
उक्तादन्यदनुक्तं स्यादुक्ते स्यात् प्रथमैव हि ।
अनुक्ते तु भवन्त्यन्या द्वितीयाद्या यथायथम् ॥१०॥
कर्तृसंज्ञे तृतीया स्याद् द्वितीया कर्म्मकारके ।
तयोरथ भवेत् षष्ठी कृति निष्ठादिवर्जिते ॥११॥
एकदा तूभयप्राप्तौ कर्म्मण्येव न कर्त्तरि ।
अकाकारप्रयोगे तु षष्ठी स्यादुभयोरपि ॥१२॥

---

१ B. बुधं. २ A. °न्दा°

क १

प्रायशः कथिता एव दृश्यन्ते कर्तृकर्म्मणोः ।
यथाभिधानमन्यासां प्रवृत्तिर्न निराकृता ॥१३॥
तृतीया करणे प्रायः चतुर्थी संप्रदानतः ।
पञ्चमी स्यादपादाने तथाधारे तु सप्तमी ॥१४॥
संबन्धेऽथ भवेत् षष्ठी निर्ण्णयस्तावदीदृशः ।
उक्तानुक्तविचारेण प्रयोगस्तेन गम्यताम् ॥१५॥

कारकसंबन्धोद्योतः ।

इहायं कर्ता रभसनन्दिर्नामा बालव्युत्पत्तये संक्षेपतः संबन्धमभिदधानः प्रस्तुवन्नाह–

षट् कारकाणि संबन्ध उक्तानुक्ततया द्विधा ।
विभक्तिश्चेति निश्चेयमवश्यं योगमिच्छता ॥२॥

षट् कारकाणि इत्यादि । अस्यायमर्थः । योगं संबन्धमिच्छता छात्रेणावश्यं निश्चेयमिति । निर्णयतो ज्ञातव्यमिति यावत् । कतमत् ? तदाह–षट् कारकाणि संबन्ध उक्तानुक्ततया द्विधा । विभक्तिश्चेति । अयमभिप्रायः। षट् कारकाणि कर्तृ-कर्म्म-करण-संप्रदाना-ऽपादाना-ऽधिकरणनामानि प्रत्येकमुक्तानुक्ततया द्विधा द्विप्रकाराणि वर्त्तन्ते । तथा सबंन्धोऽपि । तद् यथा– उक्तः कर्त्ता अनुक्तः कर्त्ता, उक्तं कर्म्म अनुक्तं कर्म्म, उक्तं करणम् अनुक्तं करणं,

---

१ This is the title given in the colophon of B as well as in the concluding sentence in A. The colophon of A, however, gives संबन्धोद्योत instead. But कारकसंबन्धोद्योत is preferable,–as the work deals both with the कारक and संबन्ध. (cf. षट् कारकाणि संबन्ध in कारिका No. 2.) २ B omits रभसनन्दिर्नामा.

३ B adds ग्रन्थारम्भेऽभिमतग्रन्थप्रमाप्त्यर्थं शिष्टाचारपालनाय च मङ्गलमाचरन् ग्रन्थं प्रतिजानीते—

भग्नं मारबलं येन निर्ज्जितं भवपञ्जरम् । निर्वाणपदमारूढं तं बुधं प्रणमाम्यहम् ॥

–तत्र बुध्यते सर्वं स बुधः । निर्वाणपदमारूढमित्यनेन 'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्मापि गच्छती'ति वचनात् वाक्यज्ञानादेव निर्विकारं भजते अतस्तज्ज्ञानस्य प्रकृतिप्रत्ययार्थप्रयोजकत्वात् तदर्थं प्रवृत्तु(? त्तिरु)चिता अतोऽस्यालोचनादेवोक्तज्ञानम् । मारबलं मात्सर्यक्रोधादिः । अयमर्थः । कामादिजयमन्तरेण निर्वाणासंभवः कामादिजयस्तु विवेकमन्तरेण न भवति । विवेकस्तु शास्त्रादेवाप्यते शास्त्रज्ञानस्यान्वयाधीनत्वात् तत्संप्रतिपादनायास्यारम्भ इति ।

४ B throughout cites complete कारिकाs, while A generally quotes only the initial portion. Later on, however, even A cites each कारका completely (cf. Nos. 12-15).

५ B. अत्र हि पाणिनीयं रहस्यं निरूप्यते। षट् कारकाणीति ।

६ B. अस्यार्थः । ७ B. °मिदम् । ८ B. षट् कारकाणीति ।

९-१० B throughout compounds उक्त and अनुक्त with the following words such as कर्ता, कर्म, करण, etc.

११ B. एवं करणादीनि, omitting उक्तं करणम्........अनुक्तमधिकरणं,

उक्तं संप्रदानम् अनुक्तं संप्रदानं, उक्तमपादानम् अनुक्तमपादानं, उक्तमधिकरणम् अनुक्तमधिकरणं, उक्तः संबन्धः अनुक्तः संबन्ध इति ।

तत्र उक्तः कर्त्ता यथा – जयति बुद्धधर्म्मः, ज्वलति हुताशनः, एधते विधुः, कारको देवदत्तः, वैयाकरणः पुरुषः, कृतः प्रणामो येन स कृतप्रणामः पुरुषः । एवमादिषु आख्यात - कृत् - तद्धितप्रत्ययानां समासस्य च कर्त्तरि विहितत्वादुक्तः कर्त्तेत्युच्यते । 'उक्ते कर्तरि प्रथमे'ति न्यायात् प्रथमा ।

अनुक्त[ः] कर्त्ता यथा – जीयते बुद्धधर्म्मेण, ज्वल्यते हुताशनेन, एध्यते विधुना, कृतं देवदत्तेन । सकर्मकस्यापि यदि कर्म्म न विवक्ष्यते तदा भावे प्रत्ययः । एवमादिषु प्रत्ययो न कर्तरि विहित इत्यनुक्तत्वात् कर्तरि तृतीया ।

उक्तं कर्म्म यथा – कटः क्रियते, ओदनः पच्यते, ग्रामो गम्यते, भुक्त ओदनः, शतिकः पटः, आरूढवानरो वृक्षः । एवमादिष्वाख्यात – कृत् – तद्धितप्रत्ययानां समासस्य च कर्म्मणि विहितत्वाद् उक्तं कर्म्मेत्युच्यते । 'उक्ते कर्म्मणि प्रथमे'ति न्यायात् प्रथमा ।

अनुक्तं कर्म्म यथा - कटं करोति, ओदनं पचति, ग्रामं गच्छति , ओदनं भुक्तवान् । एवमादिषु प्रत्ययो न कर्म्मणि विहित इत्यनुक्तत्वात् कर्म्मणि द्वितीया ।

उक्तं करणं यथा – स्नानीयं चूर्णम् । अस्यार्थः – स्नायते येन चूर्णेन तत् स्नानीयम् । 'कृत्यल्युटोऽन्यत्रापी'ति (का. ४, १, ९२) वचनात् करणेऽनीयः । एवमादिकमुक्तं करणमुच्यते । उक्तत्वात् करणे प्रथमा ।

---

१ B. संबन्धोऽपि उक्तोऽनुक्तश्च ।

२ B. तथाहि, omitting तत्र ...कर्ता ३ B. विष्णु°.

४ B. रामभक्तः । But cf. विधुना below

५ B. हरिः । But cf. देवदत्तेन below.

६ B. शेषः । By शेष पतञ्जलि is intended.

७ B. कृतप्रणामो जनः, omitting कृतः...स.

८ B. °त्वा'दुक्ते, omitting उक्तः... °च्यते.

९ A. अनुक्त कर्तरि; B. अनुक्तकर्ता यथा. But cf. उक्तः कर्ता यथा, उक्तं कर्म्म यथा, अनुक्तं कर्म्म यथा, उक्तं करणं यथा, etc. १० B. विष्णु°

११ B. इत्यनुक्तः कर्ता। अनुक्ते १२ B. एवमादिषु प्रत्ययानां. १३ B. °मेवे'ति.

१४ B omits ग्रामं गच्छति १५ B. °नुक्ते. १६ B. अयमर्थः

१७ B omits. १८ B. °ल्युटो° १९ B omits. २० B. उक्ते.

अनुक्तं करणं यथा – स्नाति चूर्णेन, असिना छिनत्ति, मनसा मेरुं[1] गच्छति। अथवा स्नायते चूर्णेन, असिना छिद्यते, मनसा गम्यते इत्यादिषु करणे[2] प्रत्ययो न विहित[3] इत्यनुक्तत्वात् करणे तृतीया।

उक्तं संप्रदानं यथा – दानीयो ब्राह्मणः। अयमर्थः[4]। दीयते यस्मै ब्राह्मणाय[5] स दानीय इति। 'कृत्यल्युटोऽन्यत्रापी'ति[6][7] (४, ५, ९२) वचनात् संप्रदाने[8] अनीयः। एवं[9] दक्षिणीयो ब्राह्मणः। दक्षिणा यस्मै दीयते स दक्षिणीयः। 'ईयस्तु हिते' (२, ६, १०) इत्यत्र योगविभागादिह संप्रदाने ईयः। एवं दत्तभोजनोऽतिथिः। समासोऽत्र संप्रदाने। एवमादिषु कृत्-तद्धितप्रत्ययानां समासस्य च संप्रदाने विहितत्वादुक्तं संप्रदानमुच्यते। उक्त[10]त्वात् संप्रदाने प्रथमा।

अनुक्तं संप्रदानं यथा – ददाति ब्राह्मणाय[11], दीयते ब्राह्मणाय, एवं दातव्यं ब्राह्मणाय[12]। एवमादिषु[13][14][15] प्रत्ययो न संप्रदाने विहित[16] इत्यनुक्तत्वात् संप्रदाने चतुर्थी।

उक्तमपादानं यथा – भीमो राक्षसः, भीष्मो राक्षसः[17]। बिभेत्यस्मादिति भीमः[18]। 'भीमादयोऽपादाने' (४, ६, ५१) इति भीभीषिभ्यामपादाने मकणादिकः[19]। एवम्[20], उत्पन्नजनपदो देशः। समासोऽत्रापादाने[21]। एवमादिषूक्तत्वाद् अपादाने प्रथमा।

अनुक्तमपादानं यथा – बिभेति राक्षसात्, अथवा भीयते राक्षसात्। एवं, भीतो राक्षसात्। नात्राऽपादाने[22] प्रत्ययो विहित इत्यनुक्तत्वाद् अपादाने पञ्चमी।

उक्तमधिकरणं यथा – आसनं पीठम्। अयमर्थः[23]। आस्यते[24] यस्मिन् इति आसनम्। 'करणाधिकरणयोश्चे'ति[25] (४, ५, ९५) अधिकरणे युट्। एवं वटकिनी पूर्णमासी[26]। प्रायेण वटका भुज्यन्ते[27] यस्यां पूर्णमास्यां सा वटकिनी पूर्णमासी।

---

१ B. omits. २ B. प्रत्ययः करणे नोत्पन्नः। ३ B. इत्यनुक्तकरणम्। अनुक्त°.
४ B omits. ५ B omits ब्राह्मणाय...इति. ६ B. °ल्युटो°
७ A. °पि वे'ति र. ८ B omits. ९ B omits एवं......°मुच्यते।
१० B. उक्ते. ११ B omits. १२ B adds गाम् अथवा १३ B. गौर्वा०
१४ B omits एवं...°णाय। १५ B. इत्यादिषु. १६ B. त°:। अनु°.
१७ B omits भीष्मो राक्षसः। १८ B omits. १९ B. °भ्यामिणादिकः।
२० B omits. २१ B. अत्र समासोऽपा°
२२ B. नात्र प्रत्ययोऽपादाने इत्य° २३ B omits. २४ B. आस्यतेऽस्मिंस्तदासनमिति।
२५ A. क्षकरणा° This seems to be a clerical error.
२६ B. पौर्ण°. २७ B. °न्तेऽस्यामित्यर्थे तद्धितो, omitting पूर्ण°...°करणे (p. 6).

अधिकरणे तद्धितो रूढित इतीन् । एवं, मत्तबहुमातङ्गं वनम् । समासोऽधिकरणे । एवमादिषूक्तत्वादधिकरणे प्रथमा ।

अनुक्तमधिकरणं यथा – आस्ते पीठे । अथवा आस्यते पीठे । एवं, आसितं [३]पीठे, गङ्गायां घोषः, तिलेषु तैलं, दिवि देवाः । एवमादिषु न कश्चिदधिकरणे प्रत्ययो विहित इत्यनुक्तत्वादधिकरणे सप्तमी ।

उक्तः संबन्धो यथा – गोमान देवदत्तः । अयमर्थः । गावो विद्यन्ते यस्य स गोमान् । तदस्यास्तीति संबन्धे मतु(? न्तु)प्रत्ययः । एवं चित्रगुर्देवदत्तः । समासोऽत्र संबन्धे । एवमादिषूक्तत्वाच्च संबन्धे प्रथमा ।

अनुक्तः संबन्धो यथा – गावो विद्यन्ते यस्य देवदत्तस्य । अथवा गोभिर्विद्यते देवदत्तस्य । एवं, राज्ञः पुरुषः, वृक्षस्य शाखा । एवमादिष्वनुक्तत्वात् संबन्धे षष्ठी ।

उक्तानुक्तयोर्दिङ्मात्रमिदम् । प्रपञ्चं तु यथास्थानमुत्तरत्र दर्शयिष्यामः ॥२॥

ननु को नाम कारकषट्कं संबन्धं च वक्ति येनोक्तमिति भण्यते इत्याह—

> यो यत्र प्रत्ययो जातः समासो यत्र वा भवेत् ।
> स एनं वक्ति युञ्जानस्तस्य लिङ्गेन संख्यया ॥३॥

यो यत्रेत्यादि । अयमर्थः । प्रत्ययस्तद्धितः त्यादिः कृत् वा यत्रार्थे कारके संबन्धे वा जातः, समासो वा यत्रार्थे भवेत्, स प्रत्ययः समासश्च, एनमिति यत्रार्थे विहितस्तमर्थं वक्ति । किंभूतो भवन् वक्ति – तत्राह – युञ्जानः संबध्यमानस्तस्योक्तस्य लिङ्गेन स्त्रीपुंनपुंसकेन संख्यया एकवचन-द्विवचन-बहुवचनैरिति । अयमभिप्रायः । यो यमर्थमभिदधाति स तस्यैव लिङ्गसंख्याभ्यां युक्तो भवति । तद् यथा – कारिका स्त्री, कारकः पुरुषः, कारकं कुलम् ।

---

१ B. अत्राधिकरणे समासः । २ B. °पूक्ताधिकरणत्वात्°

३ पीठं. But the word must be in the Locative as all examples refer to अधिकरण. ४ B inserts तथा.

५ B विहितः प्रत्यय इत्यनुक्ताधिकरणत्वात्. ६ B. omits.

७ B omits स गोमान् । ८ B. इत्यस्यार्थे मतुप्प्रत्ययः ।

९ B adds अत १० B. °कसंबन्धत्वात् ११ B omits. १२ B omits.

१३ B. °मेतत् । १४ B. °षट्कसंबन्धत्वं. १५ B. भणितम्. १६ B. यत्र°

१७ A omits. १८ B omits. १९ B. °रपि.

२० In these three groups of examples A follows the usual sequence of पुंलिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग, but the sequence adopted in B better corresponds to that of स्त्रीपुंनपुंसकेन mentioned above.

वैयाकरणी स्त्री, वैयाकरणः पुरुषः, वैयाकरणं कुलम्[1] । कृतप्रणामा स्त्री[2], कृत-प्रणामः पुरुषः, कृतप्रणामं कुलम् । तथा[3] कारिके स्त्रियौ, कारिकाः स्त्रियः, कारकौ पुरुषौ, कारकाः पुरुषाः, कारके[4] कुले, कारकानि कुलानि इत्यादि । एवमन्येष्वपि कृत्-तद्धित-समासेषु[5] लिङ्गसंख्यानियमो ज्ञातव्यः ।

आख्यातिक[6]प्रत्ययस्तु न लिङ्गं ग्रहीतुमर्हतीत्युक्तस्य[7] संख्यामात्रमुपादत्ते । तद् यथा – ओदनं पचति सूपकारः, ओदनं[8] पचतः सूपकारौ, ओदनं[9] पचन्ति सूपकाराः, ओदनं पचति स्त्री, ओदनं[10] पचतः स्त्रियौ, ओदनं पचन्ति स्त्रियः, ओदनं[11] पचति कुलं, ओदनं[12] पचतः कुले, ओदनं पचन्ति कुलानि । एवं, कटः क्रियते देवदत्तेन, कटौ क्रियेते देवदत्तेन, कटाः क्रियन्ते देवदत्तेन । एवं सर्वत्र । त्वं युवां यूयमित्येभिर्योगे पुन[13]'र्युष्मदि मध्यम' (३, १, ६) इति मध्यमः[14] पुरुषो भवति । यथा – त्वं भवसि, युवां भवथः, यूयं भवथ । एवं, त्वं हन्यसे देवदत्तेन, युवां हन्येथे देवदत्तेन, यूयं हन्यध्वे देवदत्तेन । एवं[15] सर्वत्र । अहमा[16]वां वयमित्येभिर्योगे पुन'रस्मद्युत्तम' (३, १, ७) इत्युत्तमः पुरुषो भवति । तद्[17] यथा[18] – अहं भवामि, आवां भवावः, वयं भवामः । एवं, अहं हन्ये देवदत्तेन, आवां हन्यावहे देवदत्तेन, वयं हन्यामहे देवदत्तेन । एवं सर्वत्र । अन्यत्र 'नाम्नि प्र[19]युज्यमानेऽपि प्रथम' (३, १, ५) इति प्रथमः पुरुषो भवेत् । तद्[20] यथा[21] – देवदत्तो भवति, देवदत्तौ भवतः, देवदत्ता भ[22]वन्ति । अभिभवति त्वां देवदत्तः, जा[23]नाति त्वां देवदत्तः । पच्यत ओदनस्त्वया, क्रियते कटो मया । त्वया भूयते, मया स्थीयते । एवं सर्वत्र लिङ्गसंख्यानियमः कथितः । उक्तं तु प्रथमकारिकायामुदाहृतमेव[24] । तच्च दिग्मात्रमिदम्[25] । अन्यत्राप्याख्यात-कृत्-तद्धित-

---

१ A °लमिति ।   २ B. स्त्रीत्यादि ।

३ A omits. Here even A adopts the sequence of स्त्रीपुंनपुंसक.

४ B omits कारके......इत्यादि ।   ५ B omits.   ६ B. °तिको

७ A. °र्हति । उक्तस्य.   ८–९ B omits.

१० B drops ओदनं...स्त्रियः and gives पचति पुमान् instead.

११ B omits.

१२ B omits ओदनं......कुलानि । Thus B takes the first sentence as the example for संख्याग्रहण and the sesond sentence as the example for अलिङ्गग्रहण.

१३ B. स्त्रीपुंनपुंसकेऽपि युष्मदि.   १४ A. °मपुरुषो.   १५ B omits एवं सर्वत्र ।

१६ B. एवमस्मद्युत्तमः ।   १७–१८ B omits.   १९ B. प्रयुज्ये'ति . प्रथमः ।

२०–२१ B drops. २२B. भवति देवदत्त इति । २३ B drops जानाति...°दत्तः ।

२४ B. °तम् ।   २५ B. °त्रम् ।

समासैरेवोक्तमुक्तं युक्तितः प्रतिपत्तव्यम्[1]। यदा तु[2] भावे प्रत्ययस्तदा न किञ्चिदप्युक्तं[3] भवति। तत्राऽकर्म्मकेभ्यो धातुभ्यो, भावे विहितःप्रत्ययो[4] भवति,[5] सकर्म्मकेभ्योऽपि यदि कर्म न विवक्ष्यते। प्रयोगः—भूयते देवदत्तेन, स्थीयते युवाभ्यां, सुप्यते युष्माभिः, पठ्यते[6]ऽस्माभिः, गम्यते देवदत्तेन, इत्यादि। भावः सत्ता।

सन्मात्रं भावलिङ्गं स्यादसंपृक्तं यच्च कारकैः।
धात्वर्थः केवलः शुद्धो भाव इत्यभिधीयते ॥१॥

सा चासंख्येति तस्यामभिधेयायामौत्सर्गिकमेकवचनं प्रथमपुरुषस्यैव[10][11] भवति। भावे विहितकृत्प्रत्ययानां तु प्रयोगे कर्म्मकारकमपि वर्क्षणीयं, 'भावेऽपि धात्वर्थकृता व्याप्तिरस्ती'ति न्यायात्। यदुक्तं[13]—

सकर्म्मकाणामुत्पन्नस्त्यादिर्भावविवक्षया[12][14]।
अपाकरोति कर्म्मार्थं स्वभावान्न पुनः कृतः ॥२॥[15]

यथा च प्रयोगः[16]—ग्रामं गन्तुमुद्यतः। ओदनं भुक्त्वा[17] व्रजति, एवमन्यत्राप्यूहनीयम्[18]।

ननु यस्य प्रधानक्रियाभिसंबन्धादुक्तत्वं, अनुक्तत्वं च गुणक्रियाभिसंबन्धात्, तादृशं सकलमेवोक्तं भवतीत्यपि वक्तव्यम्। तेन ओदनः पक्त्वा भुज्यते—उक्तार्थत्वा[दो]दने प्रथमैव, अन्यथा अनुक्तद्वारेण द्वितीयापि स्यात्।

सत्यं, प्रधानानुयायिनो[20] व्यवहाराः। तत[21] ओदनस्य कर्मणः प्रधानशक्तिश्चेत् भुजिक्रियानिबन्धनादभिहिता, पचनक्रियानिबन्धनापि अप्रधानशक्तिरभिहितैव प्रतिभासते। ततः कुतोऽनभिहिते विहितानां द्वितीयादीनामवकाशः? तदुक्तं 'प्रधानशक्त्यभिधाने गुणशक्तिरभिहितवत् प्रकाशते' इति साध्यत्वाद् भोजनक्रियाया

---

१ B. ° सेद्धकः स एव. २ B. °मि(?)ति।

३ A omits. ४ B. °दुक्तं ५ A. भावविहितप्रत्ययः,

६–७ B omits. ८ B. एध्यते°

९ A. सत्तायां चासंख्येति, omitting the verse सन्मात्र°

१० B. °यामेकवचनमेवौत्सर्गिकं सामान्योक्तमात्मनेपदं ११ B. °स्य.

१२ B. विवक्ष° १३ B. तथा चोक्तं. १४ B. °त्पत्तिः स्यादि°.

१५ B gives तथा चोक्तं...पुनः कृतः ॥२॥ after तद् यथा......प्यूह्यम् (i. e. यथा...°प्यूहनीयम्।) which comes next in A.

१६ B. तद् यथा. १७ A. पक्त्वा. But cf देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति below.

१८ B. °प्यूह्यम्। १९ B. उक्तत्वा°

२० B. °यायी लोके व्यवहारः। २१ B. ततश्च

२१ B. °नं(? नमि)त्यायंतक्रियायाः

प्राधान्यं, गौणत्वं च कृदन्तक्रियायास्तद्विशेषणत्वादिति। एवं देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति इत्यादावपि न्यायस्य तुल्यत्वादुक्ते कर्त्तरि प्रथमैव[१]। न कदाचिदनुक्तद्वारेण तृतीया। एवमन्यत्रापि। तस्मादुक्तत्वस्य न्यायादेव सिद्धत्वादिह विशेषो न वक्तव्य इति ॥३॥

लिङ्गसंख्याभियोगश्च प्रायो भवति दर्शितः।
वेदाः प्रमाणमित्यादि प्रयोगो येन सम्मतः ॥४॥

लिङ्गसंख्येत्यादि सुबोधम्। प्रमीयते येन तत् प्रमाणमिति[२]। "करणाधिकरणयोश्चे"ति (४, ५, १५) करणे युट् ॥४॥

मुख्यं कर्त्तारमाचष्टे प्रत्ययोऽनेककर्तृके।
मुख्यः प्रयोजको ज्ञेयः प्रयुक्तो नापरैर्यदि ॥५॥

मुख्यमित्यादि। अयमर्थः। अनेककर्तृके धातौ कर्त्तरि विहितः प्रत्ययो मुख्यमेव[३] कर्त्तारमाचष्टे। मुख्यश्च[४] प्रयोजको ज्ञातव्यः प्रयत्नवत्त्वात्। [५]नोचेदसौ प्रयोजकोऽपरैः प्रयुक्तो भवेत्। प्रयुक्ते हि अन्य एव प्रयत्नवानिति तस्यैव प्राधान्यम्। तद् यथा – यदा[६] यज्ञदत्तेन प्रयुक्तो देवदत्त ओदनं पचति तदा पचति कश्चित् तमन्यः प्रयुङ्क्ते इति वाक्ये 'धातोश्च हेता'विति (३, २, २२) एव धातोरिन्, कर्त्तरि परस्मैपदम्।[७] प्रयोगः – पाचयत्योदनं देवदत्तेन यज्ञदत्तः। उक्तार्थत्वाद्[८] यज्ञदत्ते कर्त्तरि[९] प्रथमा। देवदत्ते तु[१०] गौणकर्त्तर्यनुक्तत्वात् कर्त्तरि तृतीयैव[११]। यदा तु देवदत्तस्य प्रयोजको यज्ञदत्तो विष्णुमित्रेण प्रयुक्तः सन् पाचयति तदा अनया रीत्या पाचयतेरिनन्तादपि[१२] पुनरिन्[१३]। प्रयोगः[१४] – पाचयत्योदनं देवदत्तेन यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रः। अत्र प्रधानत्वादुक्ते विष्णुमित्रे कर्त्तरि प्रथमा। अनुक्ते तु[१५] सर्वत्र तृतीया। ईदृशी[१६] सार्वत्रिकी नीतिः ॥५॥

दुहादेर्गौणकं कर्म्म नीवहादेः प्रधानकम्।
इनन्ते कर्तृकर्म्मैव अन्यद् वा वक्ति कर्म्मजः ॥६॥

दुहादेरित्यादि। अस्यायमर्थः[१७]। दुहादेः कर्म्मणि जातः प्रत्ययो गौणमेव कर्म्म वक्ति, न प्रधानं, अभिधानात्। तत्र दुहादयः।

१ B adds भवति. २ B. °णम्। ३ B omits. ४ B. मुख्यं.
५ B. न चेदसौ परैः ६ B omits. ७ B. 'हेतुमति चे'ति इन्.
८ B. उक्तत्वा°. ९ B omits. १० B. °ऽनुक्तत्वाद्. ११ B. तथैव.
१२ B. इनन्ता°. १३ B. °णिन्। १४ B omits. १५ B omits.
१६ B. इयं तु. १७ B omits.

" दुहि–याचि–रुधि–प्रच्छि–भिक्षि–चिञामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ ।
ब्रुवि–शासि–गुणेन च यत् सचते तदकीर्त्तितमाचरितं कविना ॥ " इति ।

अत्र[2] 'च'कारेण[3] जयति-प्रभृतीनामपि ग्रहणम् ।

[4]जयत्यर्थयतीमन्थिस्तुर्यौ दण्डयतीत्यपि ।
एभिः सह बुधैर्ज्ञेया द्वादशैव दुहादयः ॥

दुह्यते गौः पयो गोपालकेन, याच्यते पौरवः कम्बलं बटुना, रुध्यते गौर्व्रजं[5] गोपालकेन, पृच्छ्यते छात्रः पन्थानं पथिकेन, भिक्ष्यते पौरवो गां द्विजेन, वृक्षोऽवचीयते फलानि लोकैः, उह्यते[6] शिष्यो धर्म्ममुपाध्यायेन, शिष्योऽनुशिष्यते शास्त्रं पण्डितेन । एवम्, ग्रामः शतं जीयते छात्रेण, गर्गाः शतं दण्डयन्ते नृपेण, प्रार्थ्यते गां गृहमेधी द्विजेन, मथ्यते सम्[9] जलधिरमृतं देवासुरैः[8] । अत्रोपयुज्यमानं पयःप्रभृतिकं कर्म्म प्रधानम् । अतस्तन्निमित्तं[10] गवादिकं गौणम्, गौणत्वात्[11] । कर्म्मणि विहितेनात्मनेपदेनोक्तमित्युक्ते कर्म्मणि प्रथमा । अनुक्ते तु[12] द्वितीया ॥

नीवह्यादेः प्रधानकर्मिति ।

[13]नीवह्यौ हरतिश्चैव तथा कृषि-विलेखने ।
चत्वार एव निर्दिष्टा नीवह्याद्या द्विकर्म्मकाः ॥

कर्म्मजः प्रत्ययः कर्म्म वक्ति इति प्रत्येकमभिसंबन्धः । प्रयोगो[14] यथा[15] – नीयते भारो[16] ग्रामं देवदत्तेन, उह्यते भारो ग्रामं देवदत्तेन, [17]ह्रियते कुम्भो ग्रामं देवदत्तेन, अजा[18] ग्राममाकृष्यते जनेन[19] । अत्र भारादेर्नीयमानस्य प्रधान[20]-त्वादुक्तत्वम् । इनन्ते कर्तृकर्म्मैव अन्यद् वेति । अयमर्थः[21] । इनन्ते[22] धातौ पूर्वं कर्त्ता सन् यः पश्चात् कर्म्म भवति तत् कर्म्म[23] कर्म्मजः प्रत्ययो वक्ति, अन्यद् वा ग्रामादिकं कर्म्म । अयमभिप्रायः । शिष्टप्रयोगानुसारेण[24] इनन्ते पर्यायेण कर्मोक्तं

१ B. संवद्ध्यते.
२ B adds अकथितं चेत्येतत् । अत्र 'गुणेन च' इति ।
३ B. °रग्रहणात्.
४ B omits this verse.
५ B. गां व्रजं. But गो must be in प्रथमा.
६ B. उच्यते.
७ B omits.
८ B. वासुदेवेन ।
९ B omits.
१० B. °त्तमिह.
११ B. गौणे. There is no दण्ड between गौणे and कर्म्मणि.
१२ B. सर्वत्र.
१३ B omits this verse.
१४ B. °गः
१५ B omits.
१६ B. ग्राममजा.
१७ B adds एवं.
१८ B. भक्तो.
१९ B. नारायणेन.
२० B. प्राधान्य°
२१ B. अस्यार्थः
२२ B. णिजंते
२३ B omits.
२४ B. °साशदिनंते

भवति इति टीकाकारः। तद् यथा – ग्रामं गम्यते देवदत्तो यज्ञदत्तेन, ग्रामो देवदत्तमिति वा। एवम्, ओदनं भोज्यते देवदत्तो यज्ञदत्तेन, ओदनो देवदत्तमिति वा। बोध्यते धर्म्मं शिष्योऽध्यापकेन, धर्म्मः शिष्यमिति वा। माणवकोऽध्याप्यते वेदमुपाध्यायेन, माणवकं वेद इति वा। मासमास्यते देवदत्तो यज्ञदत्तेन, मासो देवदत्तमिति वा। अकर्म्मकाणां प्रयोगे कालाध्वभावदेशानां कर्म्मसंज्ञा सिद्धैवेति मासस्य कर्म्मत्वम्। कालादिभिर्योगेऽप्यकर्म्मकाणामनिनि सति यः कर्त्ता स इनि व्याप्यविवक्षायां कर्म्मसंज्ञो भवति ॥

ननु यदि पर्यायोऽत्र संमतः, कथमिनन्ते कर्तृकर्म्मैवेति 'एव'कारः? सत्यम्, गत्यर्थादेः कर्तृकर्म्मैवेति नियमस्य, केषांचिदभिमतत्वात्। प्रायश्चैनमेव पक्षमाश्रित्य प्रयोगः कर्त्तव्यः। अपरस्तु पक्षः संभवाद् दर्शित इति ॥६॥

गमनाहारबोधार्थशब्दार्थाऽकर्म्मधातुषु।
अनिनन्तेषु यः कर्त्ता स्यादिनन्तेषु कर्म्म तत् ॥७॥

गमनाहारेत्यादि। सर्वत्र अनिनि सति यः कर्त्ता तस्य इनि सति व्याप्यत्वात् कर्म्मत्वापत्तौ नियमः कर्त्तव्यः। प्रयोगः – (१) गत्यर्थानां तावद् – ग्रामं गच्छति देवदत्तः, ग्रामं गमयति देवदत्तं यज्ञदत्तः। यातेर्नेच्छन्ति। तेन – यापयति ग्रामं देवदत्तेन यज्ञदत्तः। [अपि तु] संपदं प्राप्नोति चैत्रः, प्रापयति संपदं चैत्रं नृपः। (२) आहारार्थानां यथा – ओदनं भुङ्क्ते देवदत्तः, भोजयत्योदनं देवदत्तमीश्वरः। पयः पिबति चातकः, पाययति पयः चातकं जलदः। (३) बोधनार्थानां यथा – बुध्यते शिष्यो धर्म्मम्, बोधयति धर्म्मं शिष्यमुपाध्यायः। पश्यति चैत्रं मैत्रः। चैत्रं दर्शयति मैत्रं विष्णुमित्रः। (४) शब्दार्थानां यथा – पठति शास्त्रं शिष्यः, पाठयति शास्त्रं शिष्यमुपाध्यायः। आभाषते मैत्रं देवदत्तः, मैत्रमाभाषयति देवदत्तं यज्ञदत्तः। (५) अकर्म्मकाणां

---

१ B. रामेण. २ B कर्त्ता इनि सति.
३ B. गत्यादेः ४ B. पक्षोऽसंभ[व]द(द्द?)दर्शितः ५ A omits.
६ A. °तापत्तौ. ७ B omits. ८ B omits. ९ B. रामः
१० B. रामं. ११ B omits. १२ B. भुङ्क्ते ओदनं. १३ B. रामं जननी.
१४ B पयः पाययति. १५ B. बोधार्थानां. १६ B. धर्मं शिष्यः
१७ B. शिष्यं धर्म°. १८ B. रामं. १९ B. मित्रः २० B. रामं
२१ B मित्रं. २२ B शब्दानां. But it must be शब्दार्थानां.
२३ B भक्तं. २४ B. रामः २५ B. भक्त° २६ B. रामं. २७ B. भक्तिः

यथा – उत्पद्यते घटः, घटमुत्पादयति कुलालः । मासमास्ते देवदत्तः, मासमासयति देवदत्तं यज्ञदत्तः । क्रोशमास्ते व्रीहिः, क्रोशमासयति व्रीहिं[2] कृषीवलः । ओदन-पाकं स्वपिति देवदत्तः, ओदनपाकं स्वापयति देवदत्तं यज्ञदत्तः । कुरून्[3] वसति देवदत्तः, कुरून् वासयति देवदत्तं यज्ञदत्तः[4] । एवं सर्वत्र गत्यर्थादीनां कर्म्म[5] प्रतिपत्तव्यम् । यदा तु गत्यर्थानाम् इनन्तानाम् अपरहेतुविवक्षया[6] पुनरिन्[7], तदा 'ग्रामं गमयति देवदत्तं यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रः' इत्यादिकमुन्नेतव्यम्[8] । कर्म्मणि तु 'ग्रामं गम्यते देवदत्तो यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रेण' इत्यादि ॥

ननु, अत्र प्रयोगे विष्णुमित्रप्रेरितं यज्ञदत्तस्य कर्म्मत्वं प्राप्नोति, कथं कर्तृत्वम् ? सत्यम्, इह[9] हि गमिन्-प्रभृतीनाम् अर्थान्तरवृत्तितया गमनादेरर्थस्य गुणी-भूतत्वात् न[10] यज्ञदत्तस्य[11] कर्मत्वम् । अत एव गमिन्-प्रभृतीनां गत्यर्थलक्षणः कर्त्तरि क्तः प्रत्ययो न भवतीति[12] ।

यद्येवं ग्रामाय गमयतीति गत्यर्थनिबन्धनात्[13] कर्म्मणि चतुर्थी न स्याद्, गते-रर्थस्य गुणीभूतत्वात् । गौणमुख्ययोश्च मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः[14] इति ।

सत्यम्, ग्रामाय गच्छति देवदत्तः, तं यज्ञदत्तः प्रयुङ्क्ते, ततः प्रथमत एव ग्रामात्[15] चतुर्थी, पश्चाद् इनि[16] सति सर्वमनवद्यम् ॥७॥

न नीखाद्यदिशब्दाय्यक्रन्दह्वाः कर्तृकर्म्मकाः ।
तथा भक्षिरहिंसायां वहोऽसारथिकर्तृकः ॥८॥

न नीत्यादि। णीञ्–खाद्–अद्–शब्दाय–क्रन्द्–ह्वेञ् एते कर्तृकर्म्मकाः[17] न भवन्ति । कर्त्ता कर्म्म येषां ते कर्तृकर्म्मकाः । एषाम् अनिनि सति यः कर्त्ता स इनि[18] कर्म्मसंज्ञो न भवतीति यावत् । प्रयोगः – नाययति भारं देवदत्तेन यज्ञदत्तः । गत्यर्थत्वात् प्राप्तप्रतिषेधः[19] । खादयत्योदनं[20] देवदत्तेन यज्ञदत्तः, आदयति[21]

---

१ B adds एवं. २ A. B. व्रीहीन् ३ A. कुरु. ४ B. रामः
५ B. कर्तृकर्म. ६ B. °क्षायां. ७ B adds 'णिजंता णिच्' इति वाक्यात्.
८ B. °न्नेयम्। ९ B अत्र. १० B. कुतो.
११ B. यज्ञस्य ('दत्त' seems omitted by oversight).
१२ B. भवति । १३ B. °ना. १४ B. संप्रत्ययः
१५ B omits. १६ B. इन् इति सर्वत्रमनवद्यम् ।
१७ B. कर्मकर्तृका (appears to be an error.) १८ B adds सति.
१९ B. प्राप्ते प्रति° २० B. खादयति गुडं कृष्णेन जननी ।
२१ B drops आदयति वा.

वा। भक्तार्थत्वे अनयोः प्राप्ते प्रतिषेधः। शब्दं करोतीत्यर्थे 'शब्दाय'-धातुः। शब्दाययति कीचकैर्मारुतः। शब्दार्थत्वात् प्राप्तिप्रतिषेधः। क्रन्दयति बालकेन दुर्जनः। अकर्मकात् कर्मणि प्राप्ते प्रतिषेधः। देवदत्तमाह्वयति यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रः। शब्दार्थत्वे प्रतिषेधः।

तथा भक्षिरहिंसार्थमिति। अत्रापि कर्तृकर्म्मको न भवतीति संबन्धः। प्रयोगः—भक्षयति पिण्डीं देवदत्तेन यज्ञदत्तः। हिंसायां गम्यमानायां पुनर्विधिरेव। भक्षयति पतङ्गान् पक्षिणं कपोतः। भक्षयति सस्यं बलीवर्दान् वाहीकः। यस्य हि तत् सस्यं स सस्यभक्षणेन पीडितो भवतीति हिंसा गम्यते॥

वहोऽसारथिकर्तृक इति। अत्रापि कर्तृकर्म्मको न भवतीति संबन्धः। न भवति सारथिः कर्त्ता यस्यासौ असारथिकर्तृकः। अनियन्तृकर्तृक इत्यर्थः। प्रयोगः—वाहयति भारं ग्रामं षण्ढेन देवदत्तः। सारथिकर्तृकस्य तु विधिरेव। यथा—वाहयति बलीवर्दान् सस्यं ग्रामं सारथिः। एवमन्येऽपि ॥८॥

ह-क्रोरपि तथा कर्त्ता इनन्ते कर्म्म वा भवेत्।
अभिवादि-दृशोरेवमात्मने-विषये परम् ॥९॥

हृ-क्रोरित्यादि। तथेति व्याप्यविवक्षयेत्यर्थः। हृञ्-दृशोर्गतिबोधार्थतया प्राप्ते विभाषा। कृञ्-अभिवाद्योस्तु अप्राप्ते प्रयोगः। हारयति भारं ग्रामं यज्ञदत्तः, देवदत्तेनेति वा। कारयति कटं देवदत्तं यज्ञदत्तः। देवदत्तेनेति वा। अभिवादि दृशोरित्यत्र अभिवादीति वदेर्ण्यन्ताद् इन्। चौरादिको वदिरित्येके। एवमभिवादीति रूपे स्थिते पश्चाद्धेतौ इन्। अभिवादयते तनयं गुरुं जनकः, तनयेनेति वा। दर्शयते भृत्यमात्मानं राजा, भृत्येनेति वा। आत्मनेपदविषये। एवाभिवादिदृशोरिति नियमात् परस्मैपदविषये यथाप्राप्तमेव। अभिवादयति भृत्येन स्वामिनं लोकः। अत्र कर्तृविवक्षैव। चैत्रं[14] दर्शयति मैत्रं[15] विष्णुमित्रः। दृशो बोधार्थतया कर्म्मत्वमेव। गत्यर्थादिभ्यो दृशपर्यन्तेभ्योऽन्येषाम् अनिनि सति यः कर्त्ता स इनि सत्यपि कर्त्तैव भवति, न कर्म्म। तद् यथा-पाचयत्यो-

---

१ B. °त्वादस्य प्रति°　२ B. कीचकेन मारुतः।　३ B °त्वे प्रति°
४ B. अकर्मकत्वे प्रति°　५ B. देवमा°　६ B. °मिति सति कर्तृ°
७ B omits यस्य...ते.　८ B omits.　९ B omits.
१० B. अर्भीति अत्र　११ B. पश्चात्पुनर्हेताविन्।　१२ B. स्वामिनं भृत्येन.
१३ B. इत्यत्र.　१४ B. चित्रं and adds एवं before it.
१५ B. मित्रं.　१६ B. दृशि°　१७ B omits.

दनं देवदत्तेन यज्ञदत्तः, दापयति गां चैत्रेण विष्णुमित्रः, पयो दोहयति गां गोपालकेन देवदत्तः । एवमन्येऽपि पूर्विकयैव रीत्या सर्वत्र इति पुनर्हेतौ इन् ॥९॥

उक्तादन्यदनुक्तं स्यादुक्ते स्यात् प्रथमैव हि ।
अनुक्ते तु भवन्त्यन्या द्वितीयाद्या यथायथम् ॥१०॥

उक्तादन्यदनुक्तं स्यादिति सुबोधम् । उक्तानुक्तप्रतिपादनादनन्तरं विभक्तीनामुपक्रमः । उक्ते स्यात् प्रथमैव हि । 'एव' शब्दोऽवधारणे । उक्ते कारके संबन्धे वा प्रथमैव विभक्तिर्भवति, 'प्रथमा विभक्तिर्लिङ्गार्थवचने' (२, ४, १७) इति वचनात्, नान्या द्वितीयादयः, उक्तार्थत्वात्, 'उक्तार्थानामप्रयोग' इति वचनात् । अयमभिप्रायः । कर्म्मत्वादिप्रतिपादनाय द्वितीयादयो विधीयन्ते । यत्र तु कर्म्मत्वादिप्रतिपादनमन्यैरेव कृतं तत्र द्वितीयादयः कथं भवन्तीति । तद् यथा – देवदत्तो भवति, कटः क्रियते, स्नानीयं चूर्णम्, दानीयो ब्राह्मणः, उत्सन्नजनपदो देशः, आसनं पीठम्, गोमान् देवदत्तः । एवमन्येऽप्यनुसर्त्तव्याः ॥

उक्तविभक्तिं प्रतिपाद्याऽनुक्तविभक्तिं सामान्येन प्रतिपादयन्नाह अनुक्ते त्वित्यादि । अनुक्ते पुनः प्रथमां वर्ज्जयित्वा अन्या द्वितीयाद्या विभक्तयो यथायथं भवन्तीति । यो या विभक्तिर्द्वितीयादीनामन्यतमा यत्रार्थे विहिता सा तत्र भवतीति यथायथमित्यस्य परिमितोऽर्थः । अत आरभ्य यथायथमित्यनेन सूचितोऽनुक्तविभक्तीनां नियमः प्रतिपाद्यते ॥१०॥

कर्तृसंज्ञे तृतीया स्याद् द्वितीया कर्म्मकारके ।
तयोरथ भवेत् षष्ठी कृति निष्ठादिवर्ज्जिते ॥११॥

कर्तृसंज्ञे तृतीया स्यादिति । कर्तृसंज्ञे कारके तृतीया भवति, 'कर्त्तरि वे'ति (२, ४, ३३) वचनात् । यः प्रधानतया क्रियासिद्धौ व्याप्रियते, स क्रियां करोति

---

१ B. रामः २ B. कृष्णः ३ B. एवमनयैव रीत्यान्येऽपि सर्वत्र हेताविन् ।
४ B introduces this कारिका with कर्त्तरि कर्मणि भावे कर्मकर्तरि हेतुकर्तरि संयुक्तिः पंचधा । तदिदानीं निरूप्यते । added before it.
५ A. °मं. ६ B. °ब्दोऽव°. ७ A omits °वचने.
८ B adds प्रातिपदिकमात्रे प्रथमेति नान्या द्वितीयादयः, उक्तार्थत्वादिति ।
९ B. विप्रः १० A. °नुक्तां वि°. ११ B. भवन्ति । १२ B omits.
१३ B. परिणतो° १४ B. °ते. १५ B. °क्तिनियमः १६ B. भवेत्.
१७ B. 'कर्तृकरणयोस्तृतीये'ति वचनात् ।

निष्पादयतीति[1] कर्तृसंज्ञो भवति। तद् यथा—देवदत्तः काष्ठैः स्थाल्यामोदनं पचति इति[2]। अत्र देवदत्तः कर्ता[3]। अत्र हि देवदत्तेन प्रयोजितः कारकसमूहो ज्वलनादिनिजव्यापार[4]द्वारेण क्रियामभिनिर्वर्तयतीति देवदत्त एव प्रयत्नवान्, अतः[5] स एवैकः प्रधानतया कर्ता, नान्यत् काष्ठादिकम्। एवं सर्वत्र। स च द्विविधः[6] स्वतन्त्रो हेतुश्च। तत्र प्रयोजक[7] उक्तप्रकारेण[8] देवदत्तादिः स्वतन्त्रो 'यः करोति स कर्ता' (२, ४, १४) इत्यनेनास्य कर्तृसंज्ञा[9]। यः पुनस्तमेव कर्तारं प्रयुङ्क्ते स प्रयोजको हेतुः[10]। स च त्रिप्रकारः—प्रेषकोऽध्येषक आनुकूल्यभागी च। तत्र यः[11] प्रेषते प्रभुत्वेन नियुङ्क्ते स प्रेषकः। तद् यथा—कारयति कटं[12] भृत्येन देवदत्तः[13], इत्यत्र[14] देवदत्तो हि स्वामी कटकरणाय भृत्यमाज्ञापूर्वकं नियुङ्क्ते। यः पुनरध्येषते सत्कारपूर्वकं नियुङ्क्ते सोऽध्येषकः। यथा—यज्ञदत्तो गुरुं भोजयति, इत्यत्र यज्ञदत्तः[15] सत्कारपूर्वकं गुरुं[16] भोक्तुं नियुङ्क्ते। यः पुनः प्रयोज्यस्य[17] क्रियाकरणाय[18][19] आनुकूल्यमात्रं[20] भजते, न प्रेषते, नाप्यध्येषते[21], स आनुकूल्यभागी भवति[22]। स[23] च द्वि[वि]धः—। सचेतनोऽचेतनश्च। तत्र सचेतनो यथा—सुपुत्रो जनकं हर्षयति इत्यत्र[24] सुपुत्रो हि जनकस्य हर्षोत्पादनायानुकूलतां भजन्नेव[25] तत्र[26] तं नियुङ्क्ते। अचेतनस्तु प्रयोजको भवन्नानुकूल्यभागी, परं भवति न प्रेषको, नाप्यध्येषकः, अचेतनस्य प्रेषणाध्येषणे कर्तुमयोग्यत्वात्। यथा—कारीषोऽग्निरध्यापयति माणवकम्, इत्यत्र कारीषोऽग्निर्ज्वलन्[27] शीतादिकमपनयन्नध्ययनानुकूलतां भजन्[28] अत्र तं प्रयुङ्क्ते इत्यस्य प्रयोजकत्वं, 'कारयति यः स हेतुश्चे'ति (२,४,१५) हेतुसंज्ञा कर्तृसंज्ञा च[29]। स[30] एवंप्रकारः कर्ता यदानुक्तो भवति तदा तृतीया वेदितव्या। प्रयोगः[31]—देवदत्तेन क्रियते कटः, यज्ञदत्तेन कार्यते भृत्येन कटः, विष्णुमित्रेण भोज्यते ओदनं गुरुः, सुपुत्रेण मोद्यते जनकः, कारीषेणाध्याप्यते माणवकः, त्वया कृतम्, मया भुक्तम्। एवमन्येऽपि॥

---

१ B. °यति कर्तसंज्ञः 'स्वतंत्रः कर्ते'ति वचनात्। २ B omits.
३ B omits अत्र...कर्ता। ४ B. °दिव्यापार°. ५ B. ततः
६ A. द्विधा. ७ B. प्रयोगे. ८ B. °रो. ९ B. कर्ते'ति वचनात्।
१० B. adds तत्प्रयोजको हेतुश्चेति वचनात्। ११ A omits.
१२ B. भृत्येन कटं. १३ B. यज्ञदत्तः १४ B इति. १५ B. यज्ञ°. १६ B omits.
१७ B omits. १८ B. प्रयोजको यस्य. १९ B °करणतया. २० B. °मात्रं.
२१ B. नाध्येषते. २२ B omits. २३ B omits स च...तत्र सचेतनो.
२४ B. °ति। अत्र हि सुपुत्रो २५ B. भजते. २६ B. अत्र.
२७ B. कारीषो निर्वातप्रज्वलितो हि वह्निः शीता°.
२८ B. भजन्नेव तं नियुंक्ते प्रयोजकोऽस्य कार°.
२९ B adds तत्प्रयोजको हेतुश्चेति च द्वारात्कर्तृसंज्ञा च. ३० B omits.
३१ B omits प्रयोगः...भुक्तम्।

द्वितीया कर्म्मकारके स्यादिति संबन्धः। शेषाः 'शेषाः कर्म्म–करण'-इत्यादिना (२,४,१९)। 'यत् क्रियते तत् कर्मे'ति (२,४,१३) वचनात् कर्तुः क्रियया यत् क्रियते, यद् व्याप्यते, यस्य कर्तुः क्रियाया व्याप्तिरस्तीति तत् कारकं कर्म्मसंज्ञं भवति। तच्च त्रिविधं – निर्वर्त्यं विकार्यं प्राप्यं चेति। तत्र यन्निर्वर्त्त्यते निष्पाद्यते अविद्यमानमेवोत्पाद्यते, तन्निर्वर्त्त्यम्। यथा – कुलालः कुम्भं करोति। अत्र कुम्भो ह्यविद्यमानो मृदं उत्पाद्यते। अतः कुलालस्य कर्तुः करणक्रियया कुम्भस्य स्वरूपं प्रत्युपलम्भो जन्ममात्रं प्राप्तिरुच्यते। यद् विक्रियते सदेवान्यथा क्रियते तद्विकार्यम्। यथा – काष्ठं दहति देवदत्तः, इत्यत्र काष्ठं सदेव हि दाहेनान्यथा क्रियते। अतो देवदत्तस्य कर्तुर्दाहक्रियया काष्ठानामन्यथाभावो विकारोऽत्र प्राप्तिरुच्यते। तदपि द्विविधम् – एकं प्रकृत्युच्छेदसंभूतं पूर्वोक्तमेव, अपरं गुणान्तराधानद्वारेण व्यपदेशान्तरम्। यथा – सुवर्णं कुण्डलं करोति। यत्र हि कुण्डलं [गुणान्तराधानेन (?)] सुवर्णस्य प्रतिना क्रियते। एवं, देवकुलं धवलयतीत्यादावपि वेदितव्यम्। यदपूर्वं नोत्पाद्यते, नाप्यन्यथा क्रियते, अपि तु सदेव प्राप्यं विषयीक्रियते तत् प्राप्यम्। यथा – वेदमधीते विप्रः, इत्यत्र वेदोऽपूर्वो नोत्पाद्यते, नान्यथा क्रियते, अपि तु विद्यमान एवाध्ययनेन स्वविषयीक्रियते। अतो विप्रस्य कर्त्तुरध्ययनक्रियया वेदो विषयतया संबद्धो भवति। वेदस्य संबन्ध एवात्र प्राप्तिरुच्यते। तदेवंप्रकारं कर्म्म यदाऽनुक्तं भवति तदा द्वितीया वेदितव्या। प्रयोगः – कुम्भं करोति कुम्भकारः, काष्ठं दहति देवदत्तः, वेदमधीते विप्रः। एवं, कटं कृतवान् देवदत्तः, गां पयो दोग्धुं व्रजति गोपालकैः। एवं सर्वत्र॥

तयोरथ भवेत् षष्ठी कृति निष्ठादिवर्ज्जित इति। तयोरनुक्तयोः कर्तृकर्म्मणोर्निष्ठादिवर्ज्जिते कृत्प्रयोगे षष्ठी भवति, 'कर्तृकर्म्मणोः कृति नित्य'मिति (२,४,४१) वचनात्। निष्ठादिप्रयोगे तु कर्त्तरि तृतीया, कर्म्मणि द्वितीया भवति, 'न निष्ठादिष्वि'ति (२,४,४२) षष्ठीप्रतिषेधात्। कर्त्तरि

१ B omits. २ B adds कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति सूत्राच्च
३ B. यद् व्याप्य क्रियते, यस्य. ४ B. क्रियया ५ B. °तोति। ६ B. निवर्त्त्य.
७ B. °वर्त्यते. ८ B. ° नमिवो°. ९ B. °वर्त्यम्। १० B. मृदा.
११ B. प्रतिलाभो. १२ B. हि सदेव काष्ठं दा°.
१३ B omits तदपि...वेदितव्यम्। १४ B. यदि पूर्वं. १५ A °स्प°
१६ B. प्राप्यते. १७ B. नहि वेदोऽपूर्व उत्पा° १८ B. विषयी १९ B. भवतीति।
२० B. यदा कर्मानुक्तं. २१ B. दहनः २२ B. गोपालः २३ B. तयोरीति।
२४ A. कृतं २५ B. वचनात् षष्ठीनिषेधः

यथा—भवत आसिका, भवतः शायिका। 'पर्यायार्हणेषु चे'ति (४,५,८९) भावे वुञित्यनुक्तः कर्त्ता[1]। कर्म्मणि यथा—ओदनस्य पाचको देवदत्तः[2], पक्ता[3] वा। पुरां भेदको हरः, भेत्ता वा। अनेककर्म्मकाणां तु यावत् कर्म्मानुक्तं[4] भवति तावत् कर्मण्यनुक्ते षष्ठी भवति, न तु प्रधाने एव कर्म्मणि[5], विशेषाभावात्। तद् यथा—गवां[6] दोहकः पयसो गोपालकः, दोग्धा वा। अजाया ग्रामस्य नायको देवदत्तः, नेता वा। ग्रामस्य देवदत्तस्य गमको यज्ञदत्तः, गमयिता वा। मासस्य मैत्रस्य[7] आसको देवदत्तः[8], आसयिता वा। एवं सर्वत्र द्विकर्म्मकेषु। यत्रापि कर्म्मत्रितयं[9] तत्रापि सर्वत्र[10] षष्ठी भवति। यथा—कुम्भस्य भारस्य वण्ठस्य हारको यज्ञदत्तः, हारयिता वा। एवं, शिष्यस्य धर्म्मस्य अध्यापकस्य वाचको मैत्रे[:][11] वाचयिता वा। ब्रूञ्[12]-शब्दार्थतया प्रयोज्यस्याध्यापकस्य[13] कर्तुः कर्म्मत्वम्। एवं सर्वत्र। वुण्तृचौ कर्त्तरि विहितावित्यनुक्तं कर्म्म। इह गत्यर्थकर्म्मणि कृत्-प्रयोगेऽपि न षष्ठी, अभिधाना[14]-दिति कश्चित्[15]। गत्यर्थकर्म्मणि चतुर्थी चेति[16] सिद्धे द्वितीयाग्रहणं प्रयत्नतो[17] ज्ञापयति। तन्मते ग्रामं गन्ता देवदत्तः, ग्रामाय गन्ता देवदत्तो वा। एवं ग्रामं गमयिता देवदत्तस्य यज्ञदत्तः, ग्रामायेति वा; इत्यादिकं[18] भवति। अत्र च टीकाकारस्य न संमतम्। न[19] चैवं शिष्टप्रयोगा दृश्यन्ते[20]।—इति अनादरादस्माभिरुपेक्षित एवायं पक्षः॥

अथौदनस्य भृशं पाचक इत्यादिषु क्रियाविशेषणे कर्म्मणि कथं[21] न षष्ठी?

सत्यम्, 'ओदनस्य पाचकः कटं करोति' इत्यत्र कथं कटात् षष्ठी न भवति? अथ 'करोति' इत्यस्य कटः[22] कर्म्म, न तु 'पाचक' इति कृदन्तस्य धातोः। ततः[23] कुतः कृदन्ते कर्म्मणि विधीयमाना षष्ठी कटा[24]द् भवितुमर्हति? यद्येवं तर्हि[25] क्रिया-विशेषणेऽपि समानम्। यतः सर्वोऽपि धात्वर्थः करोत्यर्थेन व्याप्त इति गम्यमान-'करोति'क्रियाद्वारेणैव क्रियाविशेषणस्य[26] कर्म्मत्वम्। न चैवं 'मासस्यासक' इति

---

१ B. भावमात्रे. २ B adds वुण् तृचौ कर्मणि षष्ठी. ३ B. भक्ता.
४ B omits कर्मानुक्तं...तावत्. ५ B omits.
६ B. गवो दोहगमनाहारे इनंते ग्रामजवणाहारटक (?) पयसो गोपालकः गवां दोग्धा च।
७ B. चैत्रस्य. ८ B विष्णुमित्रः ९ B. °त्रयं. १० A omits.
११ B. विष्णुमित्रः १२ B. ब्रूञः श°. १३ B omits. १४ B. °नात्.
१५ B adds इह. १६ B. वे'ति. १७ B. °त्नाद्.
१८ B. ग्रामायेति वा।
१९ B. नैवं. २० B. °गो दृश्यते। २१ B. षष्ठी कथं न स्यात्?
२२ B. कर्म कटः २३ B. कर्म तु. २४ B. यद्भविष्यति,
२५ B omits. २६ B. °षणानां,

गम्यमानप्रापणक्रियायाः 'मासः' कर्मेति न षष्ठी प्राप्नोति। यतस्तत्रान्तर्भूतप्राप्तिक्रियेषूपवेशनादिषु आसिप्रभृतयो वर्त्तन्ते इति सिद्धान्तादासिक्रियाया एव 'मासः' कर्मेति, न[3] पुनस्तत्क्रियाव्यतिरिक्तस्य क्रियान्तरस्य गम्यमानस्येत्यलमतिजल्पितेन[4] ॥

कृति निष्ठादिवर्जित इति[5]। तत्र निष्ठादयः क्त – क्तवन्तु – शतृङ्[6] – आन – वन्सु[8] – कि – उदन्त – उकञ् – तृन् – अव्यय-खलर्थाः[ः]। तत्र क्तो यथा — गतो ग्रामं देवदत्तः, गतो ग्रामो देवदत्तेन। 'गत्यर्थाकर्मके'त्यादिना (४, ६, ४९) कर्तृकर्म्मणोः क्तः। एवं, पयो गौर्दुग्धा देवदत्तेन, ओदनः पाचितो देवदत्तेन यज्ञदत्तेन। 'भावकर्म्मणो'रित्यादिना (४. ६, ४७) कर्म्मणि क्तः ॥

क्तवन्तुर्[6]यथा — ग्रामं गतवान् देवदत्तः, गां दुग्धवान्[10] पयो गोपालकः[11]। 'कर्त्तरि क्त'दिति (४, ६, ४६) वचनात् कर्त्तरि प्रत्ययोऽयं भवति[12]। 'निष्ठे'ति (४, ३, ९३) वचनात् सर्वत्र क्तवन्तुः ॥

शतृङ्[13] यथा–ओदनं पचन् सूपकारस्तिष्ठति. ग्राममजां नयन् यज्ञदत्तः क्लिश्यति। 'वर्त्तमाने शतृङानशा'[14]वित्यादिना (४, ४. २) कर्तरि शतृङानशौ। आनश्प्रत्ययस्तु[15] न केवलं कर्त्तरि, 'आनोऽत्रात्मने' (४, ४, ५) इति वचनात् भावकर्म्मणि च भवति। एवं 'क्वन्सु[16]-कानौ परोक्षा'विति[17] (४, ४, १) वचनात् क्वन्सु-कानौ कर्त्तरि। कानस्त्रिष्वपि भवति ॥

आनेति कान- आनश् - शानङामुत्सृष्टानुबन्धानां[18] ग्रहणम्। तत्र कानः, यथा — कटं चक्राणो देवदत्तः, पयो गां दुदुहानो गोपालकः, इति कर्तरि। कटश्चक्राणो देवदत्तेन, पयो गौर्दुदुहाना गोपालकेन, इति कर्म्मणि ॥

आनश्[19] यथा — ओदनं पचमानो गायति[20] सूपकारः, ग्राममजां नयमानः पुरुषः क्लिश्यति; इति कर्त्तरि। सूपकारेण पच्यमानो[21] निष्पद्यते ओदनः, अजा ग्रामं नीयमाना[22] मानवेन पलायते; इति कर्मणि ॥

---

१ B. समासः २ B adds धातवो.
३ B. न तु तत्र क्रियांतरस्य. ४ B. °जल्पनेन. ५ B omits.
६ A. °क्तवतु° ७ B. शंतृङ्. ८ A. वसु. ९ B. गोपालकेन.
१० B. पयो दुग्ध°. ११ B. गोपालः १२ B. °यो भवति।
१३ B. शंतृ°। १४ B. °यो. १५ B. भावे. १६ A. क्वसु°.
१७ B. °क्षावच्चेति. १८ B. आन°.
१९ A. आनशः २० B. सूपकारो गायति. २१ B. पचमानेनाशिष्पाद्यते(!)
२२ B. मानवेन नीय°.

शानङ् यथा — कतीह निघ्नानाः, [कतीह] कवचमुद्वहमानाः क्षत्रियकुमाराः, कतीह मधु लिहानाः चिन्वानाः[1]। 'शक्तिवयस्ताच्छील्ये' (४, ४, ९) इति शानङ् कर्त्तर्येव भवति॥

वन्स्वेति[2] क्वन्सु[3]–वन्स्वोर्ग्रहणम्। क्वन्सुर्यथा — ओदनं पेचिवान् सूपकारः, गां पयो दुदुह्वान् गोपालकः; इति कर्त्तर्येव[4]। वन्सुर्यथा – कटं विद्वान् देवदत्त इति। वेत्तेः[5] शंतुर्वन्सुरिति (४, ४, ४) शतृङ्प्रत्ययस्य वन्सुरादेशः॥

क्रिर्यथा — कटं चक्रिर्देवदत्तः, दधिर्घटं देवदत्तः। 'आद्वर्णोपधालोपिनां क्रिर्द्वे चे'ति (४, ४, ५३) वचनात् कर्त्तरि[14] कि-प्रत्ययो द्विर्वचनं च॥

उदन्तेति यावदुकारान्तानां कृत्प्रत्ययानां ग्रहणम्। तद् यथा – कन्यामलंकरिष्णुः पिता, ग्रामं गमयिष्णुर्देवदत्तं यज्ञदत्तः। 'भ्राजि – अलंकृञ् – भू – सहो'त्यादिना (४, ४, १६) 'तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिष्वि'ति[15] (४, ४, १४) इष्णुर्भवति कर्तर्येव। एवं. पटं चिकीर्षुस्तन्तुवायः, बुभुक्षुरोदनं पिण्डपात्रिकः। तच्छीलादिषु 'सनन्ताशंसिभिक्षामुः' (४, ४, ५१) कर्तर्येव॥

उकञ् यथा — कन्यां कामुको वरः, ग्रामं गामुको जनः। तच्छीलादिषु 'शॄ – कम – गमे 'त्यादिना (४, ४, ३४) उकञ् कर्तर्येव॥

तृन् यथा – सर्वं ज्ञाता सुगतः, मुण्डयितारः श्राविष्ठायना भवन्ति वधूमूढाम्, वदिता जनापवादान् देवदत्तः। तच्छीलादिषु 'तृन् (४, ४, १५) इति वचनात् तृन् कर्त्तर्येव॥

अव्ययेति। अव्ययानां कृत्प्रत्ययानां ग्रहणम्। तदुक्तं — क्त्वा-मकारान्तश्च[23] कृत्स्वभावादसंख्यं[24] इत्यव्ययं एवेति। तथा क्त्वा – मकारान्तैः कृत्प्रत्ययप्रयोगोऽपि भावे भवति इति निश्चितम्।

---

१ B omits. २ B omits. ३ A. विलानां (?)
४ A. °स्वि°. ५ A. क्वसु–वस्वो°. ६ B. क्वसु°.
७ B adds भवति. ८ A. वसु°. ९ B. वित्तेः
१० A. °तुर्वसु°. ११ A. वसु°. १२ B omits दधि°...°दत्तः।
१३ B omits. १४ B. प्रत्ययो. १५ B. त्रित्यादिना. १६ B. कारिषु°.
१७ A इष्णुर क° (? ष्णुः क°). १८ B. पाणि°. १९ B omits ग्रामं...जनः।
२० B श्री°. २१ B. विष्णुः. २२ B omits this example.
२३ A. °रान्ताश्च. २४ B. कृतः स्व°. २५ B. °व्यया°. २६ B. °यमेवेति।
२७ A. °न्तक°.

तत्र क्त्वा यथा — ग्रामं गत्वा देवदत्तो भुङ्क्ते, गां पयो दुग्ध्वा गोपालो विक्रीणीते। एवं, भवन्तं प्रणम्य स्वजनो गतः। 'एककर्तृकयोः पूर्वकाले' (४, ६, ३) इत्यनेन क्त्वा प्रत्ययः। 'समासे भाविनी 'त्यादिना(४, ६, ५५) यबादेशः॥

मकारान्तो यथा — कटं कर्तुं देवदत्तस्तिष्ठति; ग्राममजां नेतुमुपक्रमते लोकः। 'बुण-तुमौ क्रियायां क्रियार्थाया'मिति (४, ४, ६९) तुम्। एवं, भावंभावमिह जलबुद्बुदा इव क्षणं विध्नन्ते संपदः। भूमं प्राप्ताविह आत्मनेपदी। 'णम् चाभीक्ष्ण्ये द्विश्च पद'मिति (४, ६, ७) णमो द्विर्वचनम्॥

खलर्थेति। खल्-यु-प्रत्यययोर्ग्रहणम्। तत्र खलू यथा — ईषत्करः कटो भवता, दुःप्रापं धनमव्यवसायिभिः, सुलभो वीर्यवताऽरिवधः। 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्रा(च्छ्रा)कृच्छ्रा(च्छ्रा)र्थेषु खल्' (४, ५, १०२)॥

युर्यथा — ईषत्पानो हि सोमो दीक्षितेन, दुर्याणा अटवी ग्राम्येण, सुदानं धनमीश्वरेण। 'आद्भ्यो चाद्यैर्दरिद्राते'रिति (४,५,१०४) युः। एवं दुःशासनो दुर्गस्थः परिपन्थी पार्थिवेन, दुःशासो वा। 'शासु-युधि-दृशि-धृषि-मृषां वे'ति (४,५,१०५) विकल्पेन युः। योरन्यत्र पूर्ववत् खल्। अयमेव युः प्रत्ययो दर्शितः खलर्थे ज्ञातव्यः, न पुन'र्यद्वे'त्यादिना विहितोऽपि। भावकर्मणोः कृत्य[क्त]खलर्था भवन्ति। एवमन्यदप्युदाहरणमेषां यथासूत्रमेव प्रतिपत्तव्यम्। एवं पक्षे निष्ठादिषु अनङ्गीकरणात् कृत्यानां कर्त्तरि षष्ठी वा भवति। तद् यथा – देवदत्तस्य कटः कर्त्तव्यः कार्यः करणीयः कृत्यो वा, देवदत्तेनेति वा। 'तव्यानीयौ' (४, २, ९), 'ऋवर्णव्यञ्जनान्ताद् घ्यण्' (४,२,३५) 'कृ-वृषि-मृजां वे'ति (४,२,२९) क्यप्। एवं सर्वत्र। अनेककर्तृकाणामपि यावत् कर्त्तरि विकल्पेन षष्ठी भवति। तद् यथा – पाचयितव्य ओदनो देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य, देवदत्तेन यज्ञदत्तेनेति वा। एवम् इन्-द्वयेऽपि।

---

१ B. भुंजानो. २ B omits.
३ B omits. ४ A. °ना आदेशम्॥
५ B. तिष्ठति दे°. ६ B. °जामुपक्रमते नेतुं. ७ B. इति.
८ B omits. ९ B. भावाः। १० B omits. ११ B. णम्.
१२ B. °यिना. १३ B. °वता बोधिः। १४ B. भवता. १५ A. यू.; B. यं°.
१६ B. °सनो. १७ B. यु-प्र°. १८ B. °र्थो.
१९ B. °रणं कृत्प्रत्ययानामेषां. २० B. कृत्यादीनां. २१ B. वा षष्ठी.
२२ A. यण्. २३ B. वा'. २४–२५ B omits.

तद् यथा—पाचयितव्य ओदनो देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य विष्णुमित्रस्य, देवदत्तेन यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रेणेति वा । एवं सर्वत्र ॥

ननु कथं 'राज्ञां मतो देवदत्त' इत्यादौ 'ञ्यनुबन्धे'त्यादिना (४, ४, ६६) वर्त्तमाने विहितस्य क्त-प्रत्ययस्य प्रयोगे कर्त्तरि षष्ठी भवति ? ननु क्तोऽपि निष्ठादिषु अङ्गीकृतोऽस्ति ॥

सत्यम्, इह कर्त्तुः संबन्धविवक्षया षष्ठी, तथा 'क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्य-गति-प्रत्यवसानार्थेभ्यः' (४,६,५३) इत्यनेन आधारविहितस्य क्त-प्रत्ययस्य संबन्धे कर्त्तरि षष्ठी ज्ञातव्या । तद् यथा — तिष्ठति स ग्रामे यस्मिन् देवदत्तः, स स्थितो ग्रामो देवदत्तस्य । एवं गतो ग्रामो देवदत्तस्य, भुक्तं कांस्यभाजनं विष्णुमित्रस्य । एवमन्यदपि । एवं भावे विहितस्य क्त-प्रत्ययस्य कर्त्तरि संबन्धे वा षष्ठी भवति । तद् यथा — त्वया कृतम्, तव कृतम्, मया कृतम्, मम कृतम् । एवं सर्वत्र नपुंसके भावे क्तः । अयं च विशेषः 'प्रायशः कथिता एवे'त्यादिश्लोकेन (कारिका १३) संग्रहीष्यते ॥११॥

एकदा तूभयप्राप्तौ कर्म्मण्येव न कर्त्तरि ।
अकाकारप्रयोगे तु षष्ठी स्यादुभयोरपि ॥१२॥

एकदा त्वित्यादि । एकदा पुनः एकस्मिन् काले कृत्प्रयोगे इति यावत् । उभयोः कर्तृकर्म्मणोः षष्ठीप्राप्तौ कर्मण्येव षष्ठी भवति, न कर्त्तरि । तत्र उभयप्राप्तिर्यत्र द्वे अपि कर्तृकर्म्मणी अनुक्ते तिष्ठतः । प्रयोगः — पाचयिता भक्तस्य देवदत्तेन यज्ञदत्तः, पाचको वा । नाययिता ग्रामस्य भारस्य भृत्येन पतिः, नायको वा । एवम् इन्द्वयेऽपि । तद् यथा — पाचयिता ओदनस्य देवदत्तेन यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रः, पाचको वा । ग्रामस्य गमयिता देवदत्तेन यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रः, गमको वा । एवमादिषु सकर्म्मकाणामनेककर्तृकाणां प्रधानमेव कर्त्तारं

---

१ B omits तद् यथा. २ B omits एवं सर्वत्र. ३ B omits.
४ B drops ननु...°स्ति and gives simply निष्ठादित्वात् ।
५ B adds हि. ६ B. कर्त्तरि संबन्धे. ७ B omits.
८ A संस्थितो. ९ A omits. १० B omits. ११ B. °दिना श्लोकेन.
१२ Henceforth even A quotes whole कारिकाs.
१३ B omits पुनः...यावत् and कर्तृकर्म्मणोः षष्ठी°, and simply gives एकदोभयप्राप्तौ. १४ B. भारस्य ग्रामस्य. १५ A. °दत्तस्य. १६. B. °दत्तस्य.

कर्तृविहितः प्रत्ययो वक्तीति उभयप्राप्तिः। अतो या[1]वत् कर्म्मणि षष्ठी भवति, [2]अनुक्ते यावत् कर्त्तरि तृतीया। एवं, दोग्धव्या गौः पयसो गोपालकेन, नेतव्यो भारो ग्रामस्य वण्ठेन, गमयितव्यो देवदत्तो ग्रामस्य यज्ञदत्तेन, वा[3]चयितव्योऽध्यापकः शिष्यस्य धर्मस्य चैत्रेण, नाययितव्यो भारो ग्रामस्य वण्ठेन स्वामिना। गत्यर्थादीनामिन्द्वयेऽपि। गमयितव्यो देवदत्तो ग्रामस्य यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रेणे-त्यादि। एवमादिष्वनेककर्तृकर्म्मकाणां कर्म्मणि विहि[4]तः प्रत्ययो 'दुहादेर्गौ[5]णकं कर्म्मे'त्यादि वचनाद् एकमेव कर्म्म वक्तीति उभयप्राप्तिः। अतोऽनुक्ते यावत् कर्मणि षष्ठी, कर्त्तरि तु सर्वत्र तृतीयैव। एतेन कृ[6]त्यानां क[7]र्त्तर्येवेत्यनेककर्म्मकेषु कर्त्तरि[8] न प्रवर्त्तते इति कश्चित्। वयं तु ब्रूमः – उभयप्राप्तौ कृत्येषु कर्म्मणि[9] षष्ठी न भवति। ततश्च, दोग्धव्या गौः पयो गोपालकेन, नेतव्यो भारो ग्रामं वण्ठे-नेत्यादिकमेव भवति, न तु पूर्वोक्तदर्शित उदाहरणप्रप[10]ञ्चः। एवं सति 'उवर्णस्त्वोत्व-मापाद्यः' (२,६,४६) इति सूत्रं, 'उवर्णस्त्वोत्वमापादनीय' [11]इति तद्विवरणं च[12] द्वयमुप-पन्नम्। तथा[13] जयादित्योऽपि 'कृत्यानां कर्त्तरि वे'त्यत्र सूत्रे (पा० २,३,७१) एतदेव दर्शयति। तद् यथा — उभयप्राप्तौ कृत्या[14]नां षष्ठ्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः। वोढव्यो[15] ग्रामं शाखा दे[16]वदत्तेन, नेतव्या ग्राममजा देवदत्तेनेति स्थितम्। 'भावप्रत्ययेऽपि सकर्म्म-काणामुभयप्राप्ति'रिति वचना[17]द् यावत् कर्म्मणि षष्ठी, यावत् कर्त्तरि तृतीयैव। प्रयोगः – ओदनस्य पाको देवदत्तेन, पचनं वा। गवां दोहः पयसो गोपालकेन, दोहनं वा। नायो ग्रामस्य भारस्य वण्ठेन, नयनं वा। 'श्रि–णी–भूभ्योऽनुपसर्गे' (४,५,१०) इति नयतेर्भावे घञ्। ओदनस्य पाचनं देवदत्तेन यज्ञदत्तेन, ग्रामस्य गमनं चैत्रस्य विष्णुमित्रेण, नायनं भारस्य ग्रामस्य वण्ठेन स्वामिना। इन् - द्वयेऽपि — ओद[18]नस्य पाचनं देवदत्तेन यज्ञदत्तेन विष्णुमित्रेण, ग्रामस्य गमनं चैत्रस्य विष्णुमित्रेण चै(? मै)त्रेण – इत्यादिकमुन्नेयम्। सर्वत्र भावे 'यु[19]ट्चे'ति (४,५,९४) घञ्-युटौ। एवं

---

१ B यावदनुक्ते कर्मणि. २ B omits अनुक्त यावत्.

३ A omits वाचयितव्यो...यज्ञदत्तेन, evidently through oversight.

४ A. °तप्र°. ५ B. °क'मित्यादि. ६ B. कृत्यादीनां. ७ B. °रि वे°.

८ B omits. ९ B adds कर्त्तरि च १० B adds इति.

११ B. इत्येत°. १२ B omits. १३ B omits.

१४ B. कृत्ये. १५ B. आकृष्टव्या. १६ B omits देवदत्तेन...°मजा.

१७ B omits. १८ B. पाचनमोदनस्य.

१९ A. 'युट् वे'ति.

दुहादीनाम् इनन्तानां पक्षद्वयेऽपि रूपं सुबोधमेव। भारस्य हारो ग्रामस्य देवदत्तेन यज्ञदत्तेन, हारणं वा ॥[1][2]

ननु कथ'माचर्यो[3] गवां पयसो[4] दोहो गोपालस्ये'ति कर्त्तरि[5] षष्ठी ?

सत्यम् , कर्त्तुः संबन्धविवक्षायां[6] षष्ठीत्यदोषः। 'आचर्यो[7] गवां पयसो दोहो[8] गोपालकेने'त्यपि कर्त्तरि भवत्येवं[9]।

'स्मृत्यर्थकर्म्मणि' (२.४,३८) इत्यतः कर्मानुवर्त्तनात् 'कर्त्तरि च कृति[10] नित्य'मिति सिद्धे[11] 'कर्तृकर्म्मणोः कृति नित्यम्' (२,४,२१) इत्यत्र पुनः कर्म्मग्रहणं उभयप्राप्तौ कर्म्मण्येव नियमार्थं उक्तमिति सर्वत्रोभयप्राप्ताविति[12] नियमे प्राप्ते विशेषमाह अका्कारेत्यादि। अकाकारप्रयोगे तु षष्ठी स्यादुभयोरपि।[13] अकेति वुञ्[14]ग्रहणं, तस्य 'युवुझे'त्यादिना[15] (४, ६, ५४) अक-रूपत्वात्। अकारेति[16] अ-अङोर्ग्रहणम्। एषां प्रयोगे कर्त्तरि कर्म्मणि चोभयत्रापि षष्ठी भवति ॥

अके[17] यथा – पाचिका भक्तस्य देवदत्तस्ये[18], गवां दोहिका पयसो गोपालकस्ये[19]। एवमन्यत्रापि यावत् कर्त्तरि यावत् कर्म्मणि षष्ठी कर्तव्येति[20] अलं प्रपञ्चेन[21]। 'पर्यायार्हणेषु च' (४,५,८९) इत्यत्रे[22] 'भावमात्रेऽपि दृश्यते' इति वचनात् भावमात्रेऽपि[23] वुञ् ॥

अ यथा — चिकीर्षा कटस्य देवदत्तस्य, जिहीर्षा भारस्य ग्रामस्य वण्ठस्य, पिपाचयिषा भक्तस्य सूपकारस्य[24] देवदत्तस्य। एवम् इन्द्वयेऽपि — पिपाचयिषा भक्तस्य सूपकारस्य देवदत्तस्य[25] विष्णुमित्रस्य। इहापि सर्वत्र षष्ठी[26], किं प्रयोगमालया ? 'भावे पचि-गा-पा-स्थाभ्यः' (४,५,७४) इत्यतो भावानुवृत्तौ शंसि-प्रत्ययाद् अः[27] ॥

अङ् यथा — ओदनस्य पचा स्त्रीणां, भिदा करिकुम्भस्य केसरिणः। अत्रापि यावत् कर्तृकर्म्मणोः षष्ठी। सुबोध एवास्य विषयः। 'षानुबन्धभिदादिभ्यस्त्वङ्' (४.५,८२) एवमादिकमका्कारे[28] द्वयविधायकं सूत्रं प्रतिपद्य प्रयोगः कर्त्तव्यः।

---

१ B. °नामनिनितानामिनितानां च.
२ B omits भारस्य...वा। ३ B. °श्चर्यो. ४ B पयसो गवां.
५ B. कर्तरि. ६ B. °क्षया. ७ B. 'आश्चर्यो. ८ B. दोहः पयसो.
९ B °ने'ति भवत्येव। १० A. कृतं. ११ B omits 'कर्तृ°...°त्यत्र.
१२ B. °प्राप्तौ कर्मण्येवेति. १३ B omits अका...रपि।
१४ B. वुञो ग्र°. १५ B. 'युवु'रित्या°. १६ B °र इति. १७ B अको.
१८ B. °दत्तायाः १९ °लिकायाः २० B. वक्तव्ये°. २१ B. °नेति।
२२ B. °त्राभाव°. २३ B. भावे. २४ B omits सूप...°दत्तस्य। एवम्...°कारस्य.
२५ B. यज्ञ°. २६ B. षष्ठीत्यलं प्रयोग°. २७ B. इत्यनेन अ-प्रत्ययः।
२८ B. °दिकमकारद्वयविधानसूत्रं.

अन्येषां तु स्त्रीलिङ्गभावप्रत्ययानां कर्त्तरि विभाषया षष्ठी। तद् यथा -- विचित्रा सूत्रस्य कृतिः शर्ववर्म्मणः, शर्ववर्म्मणा वा, इत्यादि ॥१२॥

प्रायशः कथिता एव दृश्यन्ते कर्तृकर्म्मणोः ।
यथाभिधानमन्यासां प्रवृत्तिर्न निराकृता ॥१३॥

प्रायशो बाहुल्येन यथायथं कथिता एव विभक्तयः कर्तृकर्म्मणोर्दृश्यन्ते। ततस्ता एव कथिताः । अन्यासां विभक्तीनां यथाभिधानं प्रयोगानतिक्रमेण प्रवृत्तिर्न निराकृता, अपि तु प्रयोगानुसारेण प्रवर्त्ततामित्यभिप्रायः । तद् यथा - 'गत्यर्थकर्म्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि'(२,४,२४)। ग्रामं गच्छति, ग्रामाय गच्छति; ग्रामं गन्तुम्, ग्रामाय गन्तुम् - इत्यादि । गमेः साहचर्याद् इहैककर्म्मका एव धातवो ग्रहीतव्याः । तेन ग्राममजां नयतीत्यादिष्वनेककर्मकेषु न चतुर्थी भवति । एवं 'मन्यकर्मणि चाऽनादरेऽप्राणिनि'(२,४,२५) । न त्वा तृणं मन्ये, न त्वा तृणाय मन्य इत्यादि । 'स्मृत्यर्थकर्म्मणि' (२,४,३८) - मातुः स्मरति, मातरं स्मरति; मातुरध्येति मातरमध्येति; मातुः स्मरयति, मातरं स्मरयति; मातुः स्मर्तुम्, मातरं स्मर्तुम् - इत्यादि । 'करोतेः प्रतियत्ने' (२,४,३९) - एधोदकस्योपस्कुरुते, एधोदकमुपस्कुरुते; एधोदकस्योपस्कर्तुम्, एधोदकमुपस्कर्तुम् - इत्यादि । एवं, अनुकरोति नारायणम्, कर्म्मणि द्वितीया । अनुकरोति नारायणस्य, संबन्धे षष्ठी । एवं 'हिंसार्थानामज्वरेः' (२,४,४०)। दास्या रुजति रोगः, दासीमिति वा; चौरस्योज्जासयति, चौरमिति वेत्यादि॥ एवं व्यवह-पणि-दिवानां व्यवहारार्थानाम् । यथा-शतस्य व्यवहरति, शतं व्यवहरति; शतस्य दीव्यति, शतं वा; शतस्य

---

१ B. °वर्मे.? मणे)ति वा। and omits इत्यादि. २ B. अत°.

३ B. न प्रवृत्तिर्नि°. ४ B omits. ५ B. °स्ययमभि°.

६ A. ग्रामाय गच्छति, ग्रामं गच्छति. ७ B. °वः परिगृ°. ८ B. चतुर्थी न.

९ A. वा°. १० B. °णी ति. ११ B omits मातुर°...°मध्येति.

१२-१३ B interchanges these couples of examples.

१४ B interchanges these examples.

१५ B interchanges these examples

१६ B omits. १७ B. °रते. १८ B. वा.

१९ B gives this example after the next one (viz. शतस्य पणायते, शतं वा ।).

पणायते, शतं वा । एवम्, आशिषि नाथः (३, २, ४२, ११)। सर्प्पिषो नाथन्ते, सर्प्पिर्वा । एषु व्यवहरति[1]-प्रभृतिषु कर्मणः पक्षे संबन्धविवक्षया षष्ठी । एवमन्यत्रापि कर्मणि यथाभिधानं संबन्धे षष्ठी प्रतिपत्तव्या ॥

एवं[2] कर्मणः करणसंज्ञा संप्रदानस्य च कर्म्मसंज्ञा विवक्षायाम् । पशुना रुद्रं यजते, पशुं रुद्राय यजते । 'संज्ञोऽन्यतरस्यां तृतीया' । पुत्रेण संजानीते, पुत्रं वा । एवं क्तस्य चेन्-विषयस्य कर्म्मणि[5] अधिकरणविवक्षया सप्तमी । अधीती व्याकरणे-अध्ययनमधीतम्, नपुंसके भावे क्तः (४, ५, ९३) । तदस्यास्तीति इन् । एवमन्यत्रापि विवक्षायां विभक्तयो द्रष्टव्याः । एवं पूर्वदर्शितो विभक्तिभेदोऽत्र श्लोके आनीय प्रतिपत्तव्यः ॥१३॥

तृतीया करणे प्रायश्चतुर्थी संप्रदानतः ।
पञ्चमी स्यादपादाने तथाऽऽधारे तु सप्तमी ॥१४॥

करणे कारके प्रायस्तृतीया भवेत् । 'शेषाः कर्म्मकरणे'त्यादिना (२, ४, १९) कर्त्रा येन क्रियते,[7] येन कर्तुः क्रिया सिद्धा भवेत्, यत् कारकं कर्तुः क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं विवक्षितं तत् कारकं, 'येन क्रियते तत् करण'मिति (२, ४, १२) करणसंज्ञं भवति । ततः कर्तुः क्रिया येन सिद्धा भवति तत् ।

ननु कथमिह करणत्वं, यावता बहूनि कारकाणि क्रियायाः साधकानि भवन्ति, करणं कारणविशेषो धर्म इति ?

सत्यम्, नोपकारकत्वं विवक्षितम् । अपि त्वन्तरङ्गत्वेन कर्त्रा यद् विवक्षितं तत् कारकं करणसंज्ञं भवति, 'साधकतमं करण'मिति (पा. १, ४, ४२) वचनात् । यथा देवदत्तः स्थाल्यामोदनं पचतीत्यत्र पचनक्रियां प्रति सत्यपि कर्तृकर्माधिकरणेऽनुत्पत्तिः कार्यस्यातो विषयार्थो वक्ति कारणान्तरमग्निकाष्ठादिकमिति । तद् द्विविधं-बाह्यमाभ्यन्तरं चेति । तयोः शरीराश्रितमाभ्यन्तरम् । तस्मादन्यद् बाह्यम् । तत्राभ्यन्तरं यथा - मनसा मेरुं[10] गच्छति । चक्षुषा दृष्टम्[11] । बाह्यं यथा - दात्रेण लुनाति, अश्वेन गच्छति[12], इत्यादि । प्रायश इति वचनेनान्यापि[13] विभक्तिर्यथाभिधानं ज्ञातव्या इति

१ B. व्यवह॰. २ B adds पक्षे ३ B. करणविवक्षया ।
४ B omits पशुना...यजते । ५ B. ॰णाधि॰. ६ B. ॰क्षया.
७ B omits येन...भवेत्. ८ B. यत्क्रियासिद्धावुपकारकं.
९ A omits the whole passage from ततः कर्तुः up to ॰काष्ठादिकमिति.
१० B omits. ११ B. दृश्यते । १२ B. गम्यते.
१३ B. वचनादन्या अपि विभक्तयो यथा॰.

सूचितम् । तद् यथा – स्तोकेन मुक्तः[1], स्तोकान्मुक्तः[2] । अल्पेन मुक्तः[3], अल्पान्मुक्तः । कृच्छ्रेण मुक्तः[4], कृच्छ्रान्मुक्तः[5] । कतिपयेन मुक्तः[6], कतिपयान्मुक्तः । 'स्तोक – अल्प – कृच्छ्र – कतिपयस्यासत्त्ववचनस्याप्यवधिविवक्षायां करणे पञ्चमी । एवं, सर्पिषो जानीते । ज्ञोऽविदर्थस्य करणे संबन्धे षष्ठी । एवमादिकं यथाभिधानं ज्ञातव्यम् ।

चतुर्थी संप्रदानतः । स्यादिति प्रत्येकमपि संबन्धः । 'शेषाः कर्म्मकरणे'-त्यादिना (२, ४, १९) पूजानुग्रहकाम्यया यस्मै[7] दातुमिच्छा तत् कारकं संप्रदानसंज्ञं भवति[8], 'यस्मै दित्से'त्यादिना[9] (२, ४, १०) । तच्च[10] त्रिविधं —

अनुमन्त्रनिराकर्तृ प्रेरकं त्यागकारणम्[11] ।
व्याप्येनाप्तं, ददातेस्तु संप्रदानं प्रकीर्त्तितम् ॥

तद् यथा – यद् ददामीत्युक्ते एवं कुरुष्वेत्यनुमन्यते, तदनुमन्तृ । यथा – गुरवे गां ददाति । यद् देहीति भणित्वा दातारं प्रेरयति तत्[12] प्रेरकम् । यथा – बटवे भिक्षां ददाति । देहीति यन्नानुमन्यते, नापि प्रेरयति, किंतु न निराकरोति, तूष्णीमास्ते, तदनिराकर्तृ । यथा – बुद्धाय[13] मालां ददाति । अत्रापि प्रायश इत्यनेन संबन्धः । दास्या संप्रयच्छते सुवर्णं कामुकः[14] । 'दाण् सा [15]चेच्चतुर्थ्यर्थे' (३, २, ४२, ५५) इति आत्मनेपदम् । अशिष्टसमाचारेऽपि[16] संप्रदानस्य करणविवक्षायां[17] तृतीया । रजकस्य[18] वस्त्रं ददातीत्यत्र न संप्रदानम् । एवमन्यत्रापि यथाभिधानं विभक्तिभेदो ज्ञातव्यः ॥

पञ्चमी[19] स्यादपादाने इति । 'शेषाः[20] कर्म्मकरणे'त्यादिना (२,४,१९) अपादाने पञ्चमीसंज्ञो[21] 'यतोऽपैति' इत्यादिना (२,४,८) । अपायं प्रत्यवधिभूतस्य सीमारूपेण विवक्षितस्य कारकस्यापादानसंज्ञा भवति[22] । तच्च[23] द्विविधं – चलमचलं वा । तत्र[24]

१–६ B omits these examples i. e, it cites only स्तोकान्मुक्तः । अल्पान्मुक्तः । ७ B adds कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानं तदेव स्यात्.

८ B omits यस्मै...भवति. ९ B. दित्सा रोचते' इत्यादिना । १० B. तत्.

११ B °रकमिति, omitting the second line.

१२ B omits. १३ B. चैत्याय. १४ B omits.

१५ A. विच्चतुर्थ्यर्थे' १६ B. °चारे. १७ B. °क्षया.

१८ A omits रजकस्य...°दानम् । १९ B. पंचमीत्यादि ।

२० B. 'शेषाः कर्मे'ति विवक्षितत्वात् . २१ B omits.

२२ B omits भवति and adds ध्रुवमपायेऽपादानम् । 'भीत्रार्थानां भयहेतुः, पराजेरसोढः, जनिकर्तुः प्रकृति 'रित्यादिभिश्चलं निर्दिष्टम् । २३ B. तद्. २४ B omits.

चलं यथा – धावतोऽश्वात् पतितः । अचलं यथा – वृक्षात् पर्णं पतति । एवं, व्याघ्राद् बिभेति, उपाध्यायादधीते, इत्यादिकमत्रधिरूपं[१] वेदितव्यम् ॥

ननु 'वृक्षस्य पर्णं पतति' इति कथं षष्ठी ?[२]

सत्यम्, संबन्धविवक्षयेत्यदोषः[४]। एतेन विवक्षातो हि[५] कारकाणि भवन्तीति दर्शितम् । तद् यथा – स्थाल्यां पचति, तथा स्थाल्या पचति, स्थालीं पचति देवदत्तः, इत्यादौ[६] एकस्य नानाविधविवक्षा दृश्यन्ते । यदा पुनरनायासेन क्रियमाणे[७] कर्मणि कर्त्ता स्वव्यापारमारोपयति तदा[८] विवक्षया कर्म कर्त्ता भवति । तद् यथा – पच्यते ओदनः स्वयमेव, अलावि केदारः स्वयमेव, इत्यादि । कर्मवत् कर्मकर्त्रेति (३,२,४१) कर्मकर्तुः कर्मवद्भावादात्मनेपदम् । तस्मिन् सति यणि चौ भवतं इति[९-१०] ओदनेत्यादौ कर्मण्युक्तत्वात् प्रथमा । एवं, [११]"भिदेलिमा माषा स्वयमेव, पचेलिमास्तण्डुलाः[१२] स्वयमेव–कर्मकर्त्तरि च 'केलिमः'। वैतृकरणं स्वाश्रयार्थमिति भावेऽपि कर्मकर्तुः प्रयोगो[१३] भवत्येवं[१४] । यथा – पच्यते ओदनेन स्वयमेव । अनुक्तत्वात् कर्त्तरि तृतीया । त्यादित्वात् कृतमकरणे कर्मवद् वा[१५] न भवति, तेन कर्मकर्त्तरि कर्मविहितप्रत्ययो[१६] न भवति । तद् यथा – कर्तव्यं कटेन स्वयमेव, ईषत्करः कटेन स्वयमेव । एवं कर्मकर्तुर्विशेषस्तत्र तत्र [१७]"प्रत्येतव्य इति स्थितम् ॥

[१८]तथाऽऽधारे तु सप्तमी । [२०]तथेति स्यादित्यर्थः[२१]। 'शेषाः कर्मकरणे'त्यादिना (२,४,१९) [२२]आधारे सप्तमी । आधारश्च क्रियाश्रयभूतः कर्त्ता[२३] कर्म वा यत्राध्रियते, यत्र कर्तृकर्मणी[२४] अवतिष्ठते[२५] स आधारः । 'य आधारस्तदधिकरणम्' (२,४,११)। इत्याधारस्याधिकरणसंज्ञा[२६] । स चतुर्विधः – औपश्लेषिकोऽभिव्यापको वैषयिकः सामीपिकश्चेति । तत्र उपश्लेषः संभोगः, तत्र भव औपश्लेषिकः । यथा – कटे आस्ते

---

१ B omits. २ B. °भूतं. ३ B. षष्ठी कथम् ?
४ B. °क्षया । ५ B omits.
६ B. स्थालीं पचति स्थाल्या पचतीति एकस्य कस्यापि नानाविवक्षा दृश्यते ।
७ B. °माणतया. ८ B. स्व°...°यति कर्त्ता तदा. ९–१० B omits.
११ B omits भिदे°...°मेव. १२ B. °मा माषाः १३ B adds °प्रत्यय°.
१४ B. प्रत्ययो. १५ B. भवति. १६ B. °वद्भावो. १७ B. °हितः कृत्प्र°.
१८ B adds सूत्रे. १९ B. आधारे. २० B omits.
२१ B. °दिति संबन्धः । २२ B omits आधारे सप्तमी । आधारश्च.
२३ A. °भूतकर्त्ता. २४ B. कर्तृ कर्म वा. २५ B. °तिष्ठते. २६ A. °णसंज्ञम्.

देवदत्तः। एवं, स्थाल्यां पचत्योदनम्[1] ॥ ये आधेयमभिव्याप्य तिष्ठति सोऽभिव्यापकः। यथा – तिलेषु तैलमस्ति ॥ विषयो [2]ह्यनन्यत्वभावो वैषयिकः। यथा – दिवि देवाः सन्ति ॥ समीपे निकटे भवः सामीपिकः। यथा – गङ्गायां घोषोऽस्तीति[3] ॥ एवं सर्वत्र ॥१४॥

संबन्धेऽथ भवेत् षष्ठी निर्णयस्तावदीदृशः।
उक्तानुक्तविचारेण प्रयोगस्तेन गम्यताम् ॥१५॥

[संबन्धेऽथ भवेत् इत्यादि।] संबन्धे षष्ठी भवेदिति[4]। 'शेषाः कर्म्मकरणे-' त्यादिना (२,४,१९) संबन्धे षष्ठी। राज्ञः पुरुषः, युवयोः पुत्रः, युष्माकं धनमित्यादि। अत्रैकक्रियाकृतः संबन्धो भवति। सा च परस्परापेक्षारूप उच्यते। तथा हि 'राज्ञः पुरुषः' इति परिपाल्यपरिपालनक्रियाकृतोऽनयोः संबन्धः। राजा हि[6] परिपालयति,[7] पुरुषश्च परिपाल्यते। ततो 'राजा परिपालयती'त्युक्ते 'क'मिति विशेषापेक्षया पुरुषेण राजा संबद्धो भवति। एवं, 'पुरुषः परिपाल्यते' इत्युक्ते 'केने'ति विशेषापेक्षायां राज्ञा पुरुषः संबद्धो भवति। एवं सर्वत्र संबन्धो ज्ञेयः ॥

[ननु] परस्परापेक्षया चे[13] द्वयोरस्ति संबन्धस्तर्हि राज-शब्दवत् पुरुष-शब्दादपि न[14] कथं षष्ठी ?[15] देवदत्तः स्थाल्यामोदनं काष्ठैः पचतीत्यादावप्युक्तेन प्रकारेण परस्परापेक्षया सर्वत्र विद्यत एव परस्परापेक्षारूपः संबन्ध इति न[17] कथमिह प्रत्येकं संबन्धे षष्ठी ? ॥

अथैवं, वक्तव्यं, सर्वतो विद्यत एव यदि नाम प्रत्येकमभिसंबन्धस्तथापि नैवासौ वक्तुमिष्टः, कर्त्रादेरर्थस्य तदानीं विवक्षितत्वात्; विवक्षिते चार्थे तदभिधायी शब्दः प्रयुज्यते इति कुतः षष्ठीप्रसंगः ? यत्रेवमिहापि प्रतिपाद्यतया प्राति-

१ B adds अत्र कर्तुः क्रियया कटः आश्रयोऽभिहितः, स्थालीं चौदनस्य कर्मणः।
२ A. गोचरे न अन्यत्रभावस्तत्र भवो वै°. ३ B. घोषः। ४ A omits संब°...'दिति.
५ B. 'शेषाः कर्म्मे'ति वचनात् षष्ठी शेषे इति च। ६ B omits परिपाल्य.
७ B. omits. ८ B. °यिता.
९ B. संबन्धो भवति राज्ञः। १० B. °पेक्षया. ११ B. °षसंबन्धो.
१२ A omits. १३ B. °रप्यस्तीति राजन्–शब्द°.
१४ B. कथं न षष्ठीति. १५ B adds सत्यम्.
१६ B. काष्ठैः स्थाल्या°. १७ B. कथ°......°न्धे न षष्ठी ?
१८ B omits सर्वतो......एव. १९ B. °मस्ति संबन्धत°. २० A. वा°.
२१ B omits. २२ B. °प्रयोगः २३ A omits प्राति°......°मेति.

पदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमेति (पा० २, ३, ४६) लिङ्गार्थः प्रधानमिति पुरुष-शब्दात् प्रथमैव, न षष्ठी, सतोऽपि संबन्धस्यापि विवक्षितत्वात्। अत एवोक्तं—

'भेद्यभेदकयोः श्लिष्टः संबन्धोऽन्योन्यमिष्यते।
द्विष्ठो यद्यपि संबन्धः षष्ठ्युत्पत्तिस्तु भेदकात् ॥' इति' ॥

तथा च काशिकायाम्, एकस्मादप्युपपद्यमाना षष्ठी विशेषणादेव भवति विशेष्यात्तु प्रथमैव, तस्माद् विवक्षितेऽर्थे तदभिधायी शब्दः प्रयुज्यते इति स्थितम्। अत एव विवक्षितत्वादिति न्यायः सर्वत्र गीयते। अत्र विभक्तिष्वेकस्मिन्नर्थे एकवचनं, द्वयोरर्थयोर्द्विवचनं, बहुष्वर्थेषु बहुवचनमन्वर्थेन लाभात् प्रतिपत्तव्यम् ॥

समानाधिकरणे विशेषणस्य च एका विभक्तिर्भवति, वचनं च। तदुक्तं—

या विशेष्येषु दृश्यन्ते लिङ्गसंख्याविभक्तयः।
प्रायस्ता एव कर्त्तव्याः समानार्थे विशेषणे ॥

तद् यथा — कटः क्रियते दर्शनीयो विपुलः। क्रियते इति प्रत्येकमभिसंबन्धात् प्रथमाः। एवं सर्वत्र न्यायोऽवगन्तव्यः।

तद् यथा — कटौ क्रियेते दर्शनीयौ विपुलौ, कटाः क्रियन्ते दर्शनीया विपुलाः। एवं, कटं करोति दर्शनीयं विपुलम्, देवदत्तेन निपुणेन कृतम्, ब्राह्मणाय वेदपारगाय गां देहि, महतो वृक्षात् पर्णं पतति, वृद्धस्य राज्ञः पुरुषः, आकाशे व्यापिनि शकुनयः सन्ति। एवं द्विवचन-बहुवचने प्रतिपत्तव्ये ॥

यद्येवं, कथं 'विंशतिः कटाः क्रियन्ते' इति ?

सत्यम्, स्वभावाद् विंशति-शब्दोऽयं एकवचनान्त एव भवति, इति विशेष्यस्य विभक्तिमात्रमुपादत्ते। एवमन्यदपि विज्ञेयम् ॥

---

१ B omits. २ A omits तथा...प्रथमैव. ३ B. °ग्रावसीयते।
४ B. °र्थबलात्प्र°. ५ B. °व्यमिति।
६ B. °णे विशेष्यस्य वि°. ७ B. तथा चोक्तं.
८ B gives this verse before the previous sentence समानाधिकरणे....च। ९ B. तुल्याधारे.
१० B. करोति कटं. ११ B omits. १२ B. कृद्धस्य.
१३ B omits आकाशे......प्रतिपत्तव्ये। १४ B omits.

ननु, तथापि 'क्रियन्ते' इति कथं बहुवचनम्, विंशतेरेकवचनान्तत्वात्? अथ कटा इति बहुवचनान्तेन पदेन संबन्धाद् अदोषः ॥

ननु, भवतु नामैवं, तथापि क्रियापदस्य प्रत्येकमभिसंबन्धोऽनन्तरमुपदर्शितः। ततो विंशतिशब्दसंबन्धाद् एकवचनमपि प्राप्नोति, न केवलं कटा इति संबन्धाद् बहुवचनम्[३] ॥

सत्यम्, प्रधानत्वाद् विशेष्यस्य तत्संख्यामेवोपादत्ते इत्यादि। यथा— 'तन्तवः पटः क्रियन्ते' इति प्रधानत्वात् प्रकृतिसंख्या। अत्र हि तन्तवः प्रकृतीभूताः प्रधानम्। विकारस्तु तन्मूलत्वादप्रधानं पटः[४]। एवं कृत्तद्धितसमासेष्वपि। तद् यथा — विंशतिः कटाः कृताः, [५]विंशतिः शतिक्यः। एवं, त्रिंशतिर्वैयाकरणाः, त्रिंशतिः पुरुषाः कृतप्रणामाः, इत्यादि। एवं विशेष्यस्य लिङ्गसमानाधिकरणे विशेषणे प्रतिपत्तव्यम्[६]। प्रधानं पुरुष इत्यादौ पुनः आविष्टलिङ्गत्वात् प्रधानादयो न विशेष्यस्य[७] लिङ्गं भजन्ते इति। अत एव लिङ्गसंख्येत्यादि-कारिकायां 'प्रायो'ऽभिहितमिति[८] ॥

तदेवम्। उक्तानुक्तप्रतिपाद्यविभक्तिं च दर्शयित्वा निगमयन्नाह[९] — निर्णय[१०]स्तावदीदृशः। उक्तानुक्तविचारेण प्रयोगस्तेन गम्यतामिति। तावच्छब्दः क्रमापेक्षायाम्[११]। ईदृशस्तावन्निर्णयः, तेन हेतुना उक्तानुक्तविचारेण प्रयोगो[१२] गम्यताम्। 'देवदत्तेन कटः क्रियते' इत्यादिरूपं वाक्यं साध्यसाधनलक्षणं गम्यतां प्रतिपाद्यतां[१३] क्रियतामिति यावत्। शिष्यैरिति संबन्धः। 'गम्यता'मिति गमेरिनन्तस्य रूपमिदं गम्यमानार्थस्य पदस्य प्रयोगं प्रति कामचार इति श्लोके 'शिष्यै'रिति नोक्तम्। तद् यथा — पर्वतः[१४] सुमेरुरित्येवायं प्रयोगः। तत्र साध्यत इति साध्यं क्रिया धात्वर्थः। क्रिया[१५] च येन साध्यते तत् साधनम् ॥

कारकषट्कं यथोक्तम्। 'क्रियानिमित्तं कारकं लोकतः सिद्धम्।' येन च पदसमुदायेन साध्यं साधनं च प्रतिपाद्येते[१६] तद् वाक्यं वक्तव्यम्। तत एव हि शाब्दो व्यवहारः प्रवर्त्तते, तस्यैव निराकाङ्क्षतया प्रवृत्तिहेतुत्वात्। तद् यथा — 'अग्निहोत्र

१ B omits. २ B. ति°. ३ B. °नमिति।
४ A. °टम्ः। ५ B omits विंशतिः...एवं. ६ A. °षः प्रतिपत्तव्यः।
७ B. °ष्यलिङ्गं. ८ B. °काः प्रागभिहिता इति। ९ B. निर्णयमाह.
१० B. निर्णय इति। ११ B °पेक्षया. १२ B. °मः, omitting गम्यताम्.
१३ B. °पद्यतां. १४ B. °तो मेरुः सुमेरुरित्ययं वा प्र°.
१५ B. क्रिया सा चापूर्वापरीभूतावयवा क्रियावयवेन. १६ A. °पद्येते.

जुहुयात् स्वर्गकामः' इत्यादिकं[1] वाक्यं प्रवृत्तिहेतुः[2], 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' इत्यादि निवृत्तिहेतुः[3]। न चैवं केवलस्य पदस्य प्रवृत्तिनिवृत्तिहेतुत्वं[4] क्वचिदपि श्रूयते। अत एवं[5] शाब्दो व्यवहारः क्रियमाणो बहुभिरेव पदैः कर्त्तव्य इति ज्ञात्वाऽपि पदसिद्धिमेकैकशः[6] कदाचिन् मन्दमतयो बहुपदयोजनार्थां[7] संदिहीरन्, अतः कारकसंबन्धोद्योतमापादयन्निह स्थित एवायमस्माकं तानुद्दिश्य परिश्रम इति[8] ॥

ऊनविंशतिसंयुक्ता ग्रन्थस्यास्य चतुःशती।
निर्णीता विगणय्यैवं शुभा रभसनंदिना ॥[9]
इमां विंशतिसंयुक्तामधिगम्यैं[10] चतुःशतीम्।
आस्तां सरभसो लोकः संबन्धोद्योतसिद्धितः[11][12] ॥

इति रभसनन्दिविरचितः[13] कारकसंबन्धोद्योतः[14] समाप्तः[15] ॥

---

१ B. इति. २ A. °तु. ३ A. °तु. ४ A. निवृत्तिप्रवृत्ति°.
५ B omits. ६ B. °जनया. ७ A adds. जना
८ B. °तसिद्धिमा°. ९ B adds समाप्तोऽयं संबन्धोद्योतः।
१० A omits this verse. ११ B. °क्तां विचार्य च. १२ B. °द्विकृत ॥
१३ B omits. १४ A संबन्धोद्योतः. १५ B omits.

Appendix I

Marginal Notes Given in Manuscript *A*

Page	Line	Text	Note
१०	३	सचते	सच् सेवने
१०	१०	शतं	द्रमान्
१०	११	उपयुज्यमानं	उपजीव्यमानं
१०	१२	तन्निमित्तं	दुग्ध्यादेर्हेतुः
११	६	कालाध्वभावदेशानां	कालाध्वभावदेशानामन्तर्भूतक्रियान्तरैः । सर्वैरकर्मकैर्योगे कर्मत्वमुपजायते ॥
११	१०	गत्यर्थादेः	गमनाहारबोधार्थशव्दार्थाकर्मधातोः
११	११	अपरस्तु पक्षः	अन्यद् वेति
१२	२	मास.... यज्ञदत्तः	काल
१२	३	क्रोश.... कृषीवलः	अध्व
१२	३	ओदन.... यज्ञदत्तः	भाव
१२	४	कुरून्.... यज्ञदत्तः	देश
१३	३	कीचकैः	स्वनन् वातान् वंशः स कीचकः
१५	२०	देवदत्तेन.... कटः	स्वतन्त्रः
१५	२०	यज्ञदत्तेन... कटः	प्रेषकः
१५	२०	विष्णुमित्रेण ....गुरुः	अध्येषकः

Page	Line	Text	Note
१६	१८	कुम्भं.... °कारः	निर्वर्त्यं
१६	१९	काष्ठं.... °दत्तः	विकार्यं
१६	१९	वेद°.... विप्रः	प्राप्यं
१७	२	भावे.... कर्त्ता	यदा भावे प्रत्ययस्तदा न किंचिदप्युक्तं भवतीति वचनात् ।
१९	२	कवचमुद्वहमानाः	कवचमुद्वोढुं वयो [येषां ते]
१९	३	मधु लिहानाः	मधु लेढुं शीलं [येषां ते]
२०	७	भू प्राप्ता° ....°पदी	भुवः प्राप्तौ वा मं । अस्यार्थः । भुवो धातोः प्राप्तार्थे वा विकल्पे मं इति आत्मनेपदं स्यात् । आत्मेनपदं विना तु भावेन प्रत्ययः ।
२०	१२	दुःशासनो....वा	पार्थिवेन राज्ञा परिपन्थी वैरी [दुर्गस्थः] कोट्टस्थः सन् दुःखेन शिष्यते इत्यर्थः ।

Page	Line	Text	Note
२०	१५	अयमेव.... ज्ञातव्यः।	अयमेवेति। आद्भ्यो युः इत्यादिना विहितः शासुयुधीत्यादिना विहितश्चेत्यर्थः।
२२	१८	पाकः	भावे घञ्
२५	६	'संज्ञो.... तृतीया।'	सम्-पूर्वस्य ज्ञा धातोः कर्मणि, अन्यतरस्यां विकल्पेन।
२६	४	असत्त्ववचनस्य	अद्रव्यवचनस्य
२६	५	ज्ञोऽविद॰ ...षष्ठी।	अस्यार्थः। मिथ्याज्ञानमज्ञानमुच्यते। **अविदर्थस्य** अज्ञानार्थस्य ज्ञा-धातोः प्रयोगे **करणे** कारके लिङ्गात् तृतीया-स्थाने षष्ठी भवति।
२६	१६	सा	तृतीया
२६	२०	अपायं	वस्तुग्रहणं विश्लेषो वा
३०	१४	निगमयन्	संक्षेपयन्
३१	६	तान्	मन्दमतीन्

Appendix II

Index of References Given in the Text

Appendix III

Index of सूत्रs quoted from the कातन्त्र

[* indicates the सूत्रs from the कारकपाद; the other सूत्रs are from other पादs.]

Appendix IV

Index of सूत्रs quoted from पाणिनि
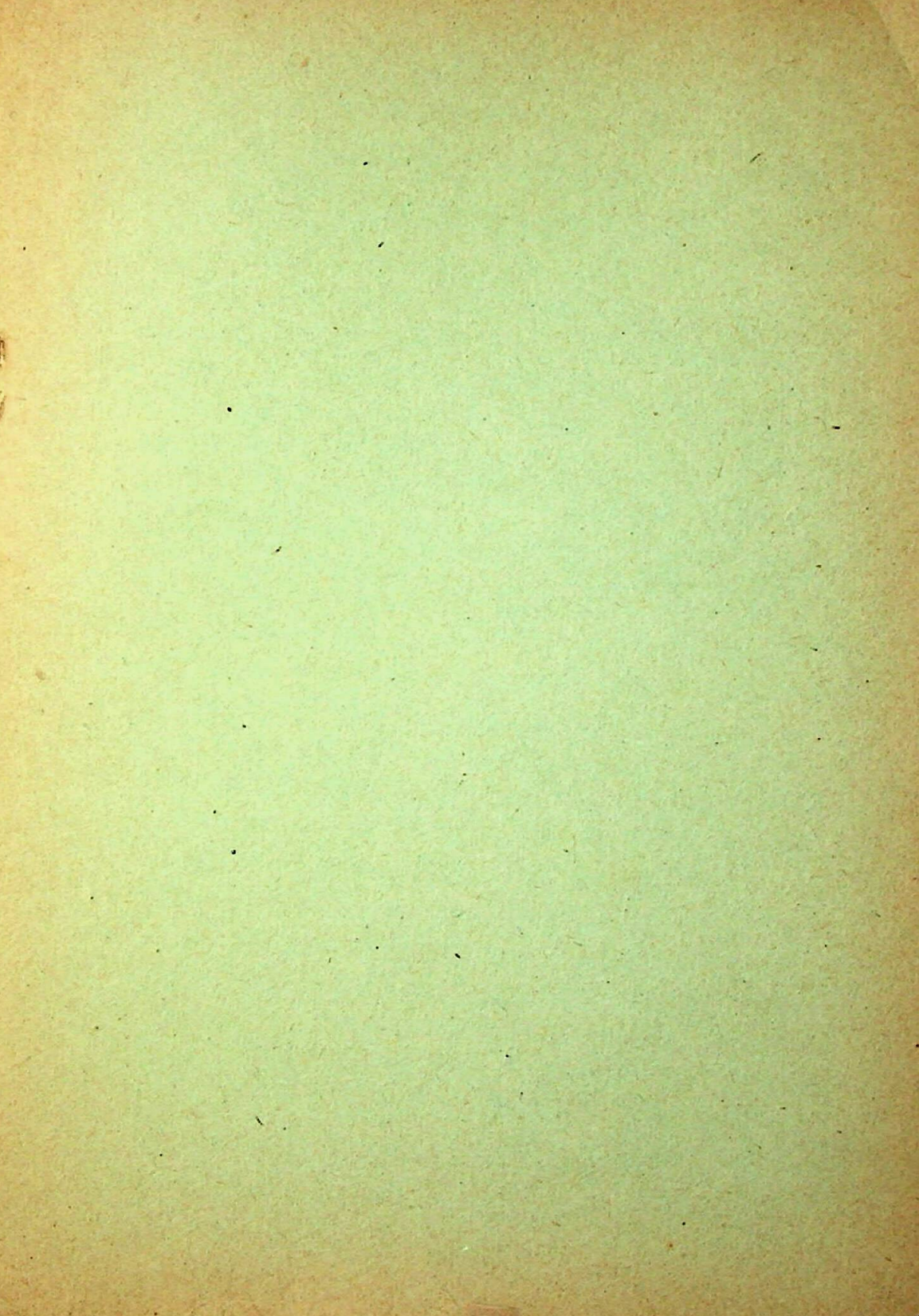
राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रकाशित ग्रन्थ

१ प्रमाणमञ्जरी – तार्किकचूडामणि सर्वदेव। २ यन्त्रराजरचना – महाराजाधिराज जयसिंहदेव कारिता। ३ कान्हडदे प्रबन्ध – महाकवि पद्मनाभ। ४ क्यामखांरासा – नवाब अलफखां (कविवर जान)। ५ लावारासा – चारण कविया गोपालदान। ६ महर्षिकुलवैभवम् – विद्यावाचस्पति स्व. श्री मधुसूदनजी ओझा। ७ वृत्तिदीपिका – मौनि कृष्णभट्ट। ८ राजविनोद काव्य – कवि उदयराज। ९ तर्कसंग्रहफक्किका – क्षमाकल्याणगणी। १० वृत्तसंग्रह – अज्ञातकर्तृक। ११ शृंगारहारावलि – हर्षकवि। १२ कृष्णगीति – कवि सोमनाथ। १३ कारकसंबन्धोद्योत – पं. रभसनन्दी।

प्रेस में

१ त्रिपुराभारतीलघुस्तव – सिद्धसारस्वत लघुपण्डित। २ बालशिक्षा व्याकरण – ठक्कुर संग्रामसिंह। ३ करुणामृतप्रपा – महाकवि ठक्कुर सोमेश्वरदेव। ४ पदार्थरत्नमञ्जूषा – पं. कृष्णमिश्र। ५ शकुनप्रदीप – पं. लावण्यशर्मा। ६ उक्तिरत्नाकर – पं. साधुसुन्दर गणी। ७ प्राकृतानन्द – पं. रघुनाथ कवि। ८ ईश्वरविलासकाव्य – पं. कृष्णभट्ट। ९ चक्रपाणिविजयकाव्य – पं. लक्ष्मीधर भट्ट। १० काव्यप्रकाश – भट्ट सोमेश्वर। ११ नृत्यरत्न कोश – महाराजाधिराज कुंभकर्णदेव। १२ नन्दोपाख्यान – अज्ञातकर्तृक। १३ चान्द्रव्याकरण – चन्द्रगोमी। १४ शब्दरत्नप्रदीप – अज्ञातकर्तृक। १५ रत्नकोश – अज्ञातकर्तृक। १६ कविकौस्तुभ – पं. रघुनाथ मनोहर। १७ एकाक्षरकोशसंग्रह – विविधकविकर्तृक। १८ शतकत्रयम् – भर्तृहरि, धनसारकृत व्याख्यायुक्त। १९ वसन्तविलास – अज्ञातकर्तृक। २० दुर्गापुष्पाञ्जलि – म.म. पं. दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी। २१ दशकण्ठवधम् – म. म. पं. दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी। २२ गोरा बादल पदमिणी चऊपइ – कवि हेमरतन। २३ बांकीदासरी ख्यात – महाकवि बांकीदास। २४ मुंहता नैणसीरी ख्यात – मुंहता नैणसी इत्यादि।

प्राप्तिस्थान – सञ्चालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर।